



ॐ

ईशावास्यम्

वाजसनेयीसंहितोपनिषद् की भाषा टीका

सरल मध्यदेशीय भाषामें कोलाख्य नगरनिवासी
पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मणने पण्डित
पौराणिक महाराज वैकुण्ठनाथजी की
सहायता से अनुवाद किया

चौथी बार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहर लाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपी

सन् १९१४ ई० ॥

ॐ

एकमेवाद्वितीयम् ॥

नमो याज्ञवल्क्याय ब्रह्मविद्याप्रदर्शकाय ॥

विज्ञापन ॥

सर्व सुज्ञ सज्जन विवेकविचारशील पाठकजनों को विदित हो कि इस कलिकाल कराल महाराज के राजशासन में विशेष करके इस भारतवर्ष की प्रजा प्रायः प्रज्ञाहीन होती है इसही कारण से उनको वेद शास्त्रों का अध्ययन अरु उनका अर्थज्ञान यथार्थ होता नहीं अरु तिसके न होनेसे धर्म, अधर्म, स्वार्थ, परमार्थ, लोक, परलोक, शुभ, अशुभ, कर्तव्य, अकर्तव्य आदिकों का विवेक किञ्चिन्मात्र भी होता नहीं तिसके न होनेसे अज्ञानवश भये विषयवासना कर ताड़ितचित्त शिश्नोदरपरायण पशुवत् पञ्चविषयात्मक जगदारण्य के सम्मुखही धावते हैं अरु जन्म जन्मान्तररूपी गर्त में जो कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, रोग, ताप, योग, वियोग, हानि, लाभ, जन्म, मरणादि अनेक अनर्थरूप आवरणसे वेष्टित हैं पतनभाव को पाय अनिवार्य दुःखों को प्राप्त होते हैं। तथाच। "गर्तमिवपतति"। बृ० उ० अ० ६ के तृतीयज्योतिर्ब्राह्मण विषे ऐसी सहस्रावधि प्रजा में कोई एक वेदशास्त्र करके प्रतिपाद्य जे अपराविद्या आश्रित अतिगहन कर्ममार्ग। "गहना कर्मणोगतिः"। तिस विषे प्रायः सकामता से प्रवृत्त होते हैं परन्तु तिसके कर्तव्यविधि फल

तात्पर्य को जानते नहीं केवल वासना के वश भये अपने मनकी युक्ति अनुसार आचरण करते हैं। अथवा नाना प्रकार के मतवादी जे वेदबाह्य मत के चलानेवाले हुए हैं तिनके मतमद से तिलकादि बाह्य मुद्राको ही पुरुषार्थ मानके मदोन्मत्त फिरते हैं। इस प्रकार के सहस्रावधि मनुष्यों में कोई एक बिरला विषयों से वैराग्यवान् परमसावधान आत्मजिज्ञासु होता है परन्तु पूर्व संस्कार की किंचित् मलिनतासे प्रज्ञाकी मन्दता करके वेदशास्त्रों का यथार्थ अध्ययन विचार अभ्यास बनता नहीं अरु सतयुगादिवत् ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक वेदाध्ययन इस कलिराज महाराज के राजशासन में प्रायः बने नहीं क्योंकि इस काल में मनुष्योंके आयुः, बल, वीर्य, प्रज्ञा आदि अति अल्प होते हैं अरु बाल्यावस्था सेही अन्न वस्त्रादिकों के अर्थ चिन्तायुक्त व्यावृत्तचित्त होता है एतदर्थ मन्दअधिकारी जो संस्कृतविद्या के संस्काररहित वैराग्यशील शान्तात्मा आत्मजिज्ञासु हैं तिनके विचारार्थ तादृशही शास्त्रविद्यारहित अतिअल्पज्ञ कोलाख्यनगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागरब्राह्मण ने केवल अपने परमदयालु महात्मा ब्रह्मवेत्ता श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वतीजी गुरुमहाराज के पादपद्मरज की कृपा से अरु शास्त्रज्ञ पण्डितों की सहायता से ईशादि उपनिषदों की भाषाटीका करनेका संकलपकर ईश—केन—कठ—इन तीन उपनिषदों की टीका किंचित् श्रीशंकराचार्य के भाष्यार्थानुसार किया परन्तु स्वसमीप में द्रव्याभाव के कारण उनका मुद्रित होय लोकोपकार में प्रकाशित होना दुःसाध्य जान अन्य उपनिषदों की टीका करने से चित्त उपराम भया परन्तु सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमात्मा ने इस मेरे शिवसंकल्प की सिद्धत

के अर्थ ज़िलअ अलीगढ़ के अतरौलीग्रामनिवासी विवेकी आत्मनिष्ठ लालाश्यामलालजी कायस्थ के अन्तःकरण में श्रद्धा उत्पन्न कर उनके पत्र द्वारा महान् उत्तमकारी पुस्तकको श्रीमती धर्मात्मा ठकुरानी महताबकुवँरि रईस कोटिला परगनह फ़ीरोज़ाबाद ज़िलअ आगरा के नेत्रगोचर कराया तब उस धर्मात्मा देवी ने अपने कार्याध्यक्ष कुवँर एदलसिंहजी की सम्मति से ईश अरु केन इन दो उपनिषदों की इस टीका को मुद्रित कराय प्रकाशित किया। अब इसही टीका को बहुत शुद्ध कराय श्रीमान् परमधार्मिक मुंशीनवलकिशोरजी साहब ने अपने लक्ष्मणपुर के सहायन्त्रालय में मुद्रितकराय सर्वलोकोपकारार्थ प्रकाशित किया सो—

[अस्तु]

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ईशावास्योपनिषद्
भाषानुवादसहित ॥

ॐ ईशावास्यमिदꣳसर्वंयत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥

पदान्वयः ॥

यत् किञ्च जगत्यां जगत् इदं सर्वं ईशा वास्यं तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा कस्य स्वित् धनं मा गृधः ॥ १ ॥

पदार्थ ॥

जो कुछ जगत्‌विषे जगत् यह सर्व ईश्वरकरके आच्छादित है । तिससे त्यागकरके रक्षाकरो किसीके भी धनकी मत आकांक्षा करो ॥ १ ॥

भावार्थ ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य ! जो १ । कुछ २ । जगत्‌विषे ३ । जगत् भाव है ४ । अर्थात् पृथिवीआदि लोकलोकान्तर जो जगत् है तिसविषे जो कुछ नामरूपात्मक जगद्भाव है । यह ५ । अर्थात् यावत् इन्द्रिय मन बुद्ध्यादि करके स्थूल सूक्ष्म अनुभव में आवता है तावत् । सर्व ६ । परमेश्वर परमात्मा करके ७ । आच्छादित है ८ । अर्थात् जो चराचर का आत्मा सर्वान्तर होत सन्ते सर्व सम्बन्धरहित आकाशवत् सदा शुद्ध एकरस ज्ञानस्वरूप है सोई परमेश्वर परमात्मा है तिस करके सर्व चराचर जगत् आच्छादित है अर्थात् अनुभव विषे स्थित है सो अनुभव यह अपुन जो आत्मा है सोई परमात्मा है क्योंकि प्राणमनादि सर्व के अन्तर सर्वका अनुभवी है ताते आत्मा है । "*आत्मासर्वान्तर" ।

* बृ० उ० अ० ३ के अन्तर्यामी ब्रा० विषे ॥

अरु सोई आत्मा प्राण मन बुद्धिआदि किसी का भी विषय नहीं ताते परमात्मा है। इस प्रकार परमात्मा से अभिन्न आत्मरूप जे अपुन सोई जगत्‌रूपहैं क्योंकि यावत् जगत्है तावत् सर्व अपने अनुभव बिषे स्थितहै अर्थ यह कि अपना अनुभवही जगत्‌रूपहो भासताहै ताते जगत् अनुभवरूपहै सो अनुभव आत्मासे इतर नहीं 'जैसे अग्निसे दाहकता भिन्न नहीं' अरु आत्मा परमात्मासे इतर नहीं क्योंकि परमात्माने अपनी इच्छा से सर्व जगत्‌रूप होय तिसबिषे आत्म (अन्तर्यामी) रूपसे आप ही प्रवेश कियाहै तथाच। "* तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"। ताते वास्तवकरके परमात्मा आत्मा अरु जगत् अभेदरूपही हैं तथाच। "† सर्व्वं खल्विदम्ब्रह्म"। "‡ अयमात्मा ब्रह्म"। "पुरुषएवेदं सर्व्वं"। "× वासुदेवः सर्वमिति"। इस प्रकार अनेक श्रुति स्मृति आदिकों के प्रमाणसे यह सर्व चराचर जगत् सत्य परमात्मज्ञान करके आच्छादितहै सो कैसा है जगत् जो जगत्त्व करके असत्य अरु अधिष्ठानसत्ता करके सत्यरूप है 'जैसे मृत्तिका बिषे घट सो घटत्व करके वाचारम्भणमात्र असत्य है, तैसेही सर्वाधिष्ठान आत्मा बिषे सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत् अविद्या करके कल्पित ताते मिथ्या है ऐसे कल्पित नामरूपात्मक जगत् बिषे जो सत्यप्रतीति भाव तिसको सत्य परमात्मज्ञान से ९। त्याग करके १०। अर्थात् असत्यरूप जगत् बिषे अज्ञानजन्य जो एषणा तिस को त्यागके अपने आत्मा की रक्षा करो ११। अर्थात् सर्व के अभावसे जे एक निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता अवशेष रहे हैं तिस अवस्था बिषे अनुकूल हो। अरु किसी के १२। भी १३। धनकी १४। मत १५। आकांक्षा करो १६॥ अर्थात् यावत् नाम रूपात्मक जगत् है तावत् सर्व पञ्चविषयात्मक होने से इन्द्रियों का भोग्यरूपी धन है तिनमें से किसी के भी धनकी मत आकांक्षा करो। अथवा यह मेरा यह मुझको प्राप्त

---

* तै० उ० की आनन्दवल्ली बिषे। † छां० उ० अ० ४ बिषे। ‡ मां० उ० बिषे। पुरुषसूक्त में। × भ० गीता में॥

होय इस बुद्धिको छोड़दे क्योंकि यह जगत्रूपी धन किसका है किन्तु किसी का भी नहीं एकके समीप से दूसरे के समीप जानेवाला चञ्चल अरु नाशवान् है ताते यावत् पञ्चविषयात्मक जगत् है तिस सर्वको मिथ्या जानके तिसकी आकांक्षा छोड़ सत्य सर्वात्मभाव बिषे स्थित हो ॥ १ ॥

तात्पर्य ॥

" ईशावास्यमिदꣳ सर्व्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् " इस प्रथम मन्त्र के पूर्वार्ध से वेदभगवान् ने आत्मतत्त्व का उपदेश किया । अरु " तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः " इस तृतीयपाद करके जिज्ञासु पुरुषको जो आत्मज्ञान की परिपक्वता इच्छित है तो आत्मज्ञान के विचार से संन्यासपूर्वक एषणात्रय का त्याग करके अपने आत्मा की रक्षाकरे । अर्थात् एषणा पूर्वक कर्मही जीवों को नानाप्रकार के जन्म मरणादि महान् क्लेश को प्राप्त करनेवाले हैं तिनसे अपने आपकी रक्षा बिषे कर्म एषणाके न्यास पूर्वक आत्मज्ञानही समर्थ है तथाच " नान्यः पन्था विमुक्तये " मोक्षार्थ अन्य मार्ग नहीं । ताते एषणात्रय त्यागके आत्मज्ञानद्वारा अपने आपकी रक्षा करो । अरु " मागृधःकस्यस्विद्धनम् " इस चतुर्थपाद करके कर्म एषणा के न्यास की परिपक्वता के अर्थ सूचना है जो किसी के भी धन की मत आकांक्षा करो । अर्थात् मोक्ष के अर्थ कर्म एषणा का न्यास अर्थात् संन्यास किया है जिसने तिसको कालत्रय में भी विषयादि पदार्थों की आकांक्षा कर्तव्य नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

इस उपनिषद् का प्रथममन्त्र ब्रह्मविद्या के अधिकारी मुमुक्षुप्रति है जो मोक्षकामी को मोक्षार्थ संन्यासपूर्वक एक आत्मज्ञानही उपाय है सो प्रतिपादन करके अब जो कि संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान के अभ्यास में असमर्थ हैं तिन मध्यम अधिकारी के अर्थ वेद भगवान् द्वितीय मन्त्र को प्रतिपादन करते हैं ॥

कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

पदान्वयः ॥

इह कर्म्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत् एवं त्वयि नरे इतः अन्यथा न अस्ति कर्म न लिप्यते ॥ २ ॥

पदार्थ ॥

यहां [अग्निहोत्रादि विहित] कर्मोंको करते ही सौ वर्ष जीवनेकी इच्छाकरो । इसप्रकार तू जो पुरुष है तिसमें इससे प्रकारान्तर नहीं है [जो] कर्मसे न लिपायमान हो ॥ २ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! । यहां १ । अर्थात् आत्मज्ञान के अभ्यास की असमर्थता में कर्मों को २ । अर्थात् संध्या, गायत्री, अग्निहोत्रादि विहित कर्म जोकि वेदशास्त्रों ने धर्मरूप से कर्तव्य कहे हैं अरु जिनके न करने से धर्महानिरूप प्रत्यवाय है तिन कर्मों को करते ३ । ही ४ रहो । अरु सकामकर्म मत करो क्योंकि कर्म में फल की इच्छा न करने से निष्काम कर्मद्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होने से ज्ञानद्वारा कर्म मोक्षसाधक है ताते निष्काम विहितकर्म करतेही रहो । इसप्रकार निष्काम विहितकर्म करतसन्ते जो । सौ १०० ।५। वर्ष ६ । जीवनेकी इच्छाकरो ७। अर्थात सौ वर्ष जो मनुष्यों के आयुकी परमावधि है तावत्पर्यन्त जो जीवने की इच्छा होय तो इच्छाकरो । अथवा जो सौ वर्ष परमावधि पर्यन्त जीवते रहो तो भी संसारबन्धनकी निवृत्ति के अर्थ विहितकर्म निष्काम करतेहीरहो । अर्थात् यावत्पर्यन्त संसार से दृढ वैराग्य न होय तावत्पर्यन्त विहित कर्म का त्याग न करना । इसप्रकार ८ । कर्म करने

से आत्मज्ञान न होत सन्ते भी तुम ९ । पुरुषविषे १० । अर्थात् नर शरीराभिमानी तुम बिषे कर्मबन्धन न होगा इससे ११ । अन्य प्रकारान्तर १२ । नहीं १३ । है १४ । अर्थात् सकामकर्म हैं सो बारम्बार जन्ममरण के हेतु हैं । तथाच । "* योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्येनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्" । ताते एषणात्रयके न्यासपूर्वक आत्मअध्यास में असमर्थ पुरुष को केवल विहित निष्काम कर्मही कर्तव्य है कि जिस करके कर्म से १५ । नहीं १६ । लिपायमान हो १७ । अर्थात् विहित निष्काम कर्म करतसन्ते जो कदापि अज्ञान किंवा आपत्त्यादि करके तुमसे अशुभ कर्म भी बन आवेगा तो सो कर्म तुमको हानि करने को समर्थ न होगा क्योंकि वो कर्म किसी कामना को लेके नहीं हुआ ॥ २ ॥

तात्पर्य ॥

एषणात्रय बिषे दृढ़ वैराग्य भये विना संन्यास कर्तव्य नहीं क्योंकि वैराग्य विना संन्यास जो कि मोक्ष में आदि साधन है सो मोक्ष का साधक न होयके पतितत्व का हेतु होगा क्योंकि वैराग्य विना अन्तःकरण से कामना निवृत्त होती नहीं अरु कामना की निःशेष निवृत्ति विना वृत्तिकी एकाग्रतापूर्वक आत्माभ्यास होनेका नहीं तब मोक्ष कहां किन्तु कदापि नहीं ताते वैराग्य विना का संन्यास मोक्ष का हेतु नहीं । अरु संन्यासाश्रम करनेसे कर्माधिकार रहे नहीं ताते देव पितृ आदिकों के अर्थ किंवा भोग्य कामनार्थ कर्म बने नहीं तब देव पितृ आदिकोंके लोक की प्राप्ति अथवा कामना की सिद्धि से भ्रष्ट होय नीचगति की प्राप्ति होगी ताते एषणात्रय से दृढ़ वैराग्य भये विना संन्यास न लेके विहित जे वेदोक्तकर्म हैं ते निष्काम कर्तव्य हैं क्योंकि एषणाके त्यागपूर्वक संन्यास सहित आत्मअध्यासमें असमर्थ पुरुष को सिवाय विहित

---

* कठवल्ली उपनिषद् की पञ्चमवल्ली के ७ वें मन्त्र में ॥

निष्काम कर्मों के कर्मबन्धनों की निवृत्ति होने के अर्थ अन्य उपाय कोई नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

प्रथम मन्त्र में मुमुक्षु के अर्थ एषणा के त्यागपूर्वक आत्मज्ञान प्रतिपादन किया। अरु इस द्वितीयमन्त्र से आत्मोपासना में असमर्थ पुरुष को संसार की निवृत्ति के अर्थ विहित निष्कामकर्म प्रतिपादन किया। अब इन दोनों का जो कि संसार के क्लेशोंकी निवृत्ति का साधन हैं तिनके त्यागी पुरुष हैं तिनकी निन्दा के अर्थ वेद भगवान् तृतीय मन्त्र का प्रारम्भ करते हैं ॥

असूर्य्या[6] नाम[7] ते[4] लोका[5] अन्धेन[1] तमसा[2]ऽऽवृताः[3]। तां[15] स्ते[13] प्रेत्या[14]भिगच्छन्ति[16] ये[8] के[9] चात्म[10]हनो[11] जनाः[12] ॥ ३ ॥

पदान्वयः ॥

अन्धेन[1] तमसा[2] आवृताः[3] ते[4] लोका[5] असूर्य्या[6] नाम[7] ये[8] के[9] च[10] आत्महनः[11] जनाः[12] ते[13] प्रेत्य[14] तान्[15] अभिगच्छन्ति[16] ॥ ३ ॥

पदार्थ ॥

अदर्शनात्मक[1] अज्ञान[2] से आवृत[3] हैं सो[4] लोक[5] असूर्य्य[6] नाम[7] हैं जे[8] कोई[9] एक[10] आत्महत्यारे[11] पुरुष[12] हैं सो[13] मरके[14] तिन[15] (लोकोंमें) निश्चय प्राप्त[16] होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य! जो कि पूर्वकथित प्रकार से विपरीत आचरण करनेवाले पुरुष हैं। अर्थात् प्रथम कहा जो मुमुक्षु के अर्थ आत्मज्ञान अरु तिस की असमर्थता में निष्काम विहित कर्म तिनको त्यागके कामुक अरु निषिद्ध कर्मों को ही करते रहते हैं ऐसे जे अविवेकी पुरुष हैं तिनको देहत्यागान्तर जिन लोकों की प्राप्ति होती है तिसको कहतेहुए वेद

भगवान् उन पुरुषों की निन्दा करतेहैं ॥ जे अदर्शनात्मक १ । अज्ञान करके २ । आवरणहुए ३ । जे ४ । लोकहैं ५ । अर्थात् आत्मा के यथार्थ दर्शन की योग्यता नहीं जिनमें ऐसे जे अदर्शनात्मक अज्ञानावृत देवताआदि शरीररूपी लोक सो सर्व असूर्य ६ नाम हैं ७ । अर्थात् असूर्यलोक उसको कहते हैं कि नहीं है ज्ञानरूपी प्रकाशता जिनमें कि जिस करके अपने आप आत्मा को यथार्थ अनुभव कियाजाय ऐसे जे देवादि तृणपर्यन्त शरीररूपी लोक तिनको असूर्य अथवा असुर लोक इन नामों से कहते हैं तिन लोकों में जे ८ । कोई ९ । कि १० । आत्महत्यारे ११ पुरुष हैं १२ अर्थात् जिन पुरुषों को अपने आप अजर अमर अक्रिय अद्वैत आत्मा के स्वभाव का अर्थात् "सोहमस्मि" भाव का अभाव है अर्थात् परमात्मा को अपना आत्मत्व करके न जानना सोई आत्मा का हननहै क्योंकि जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप आत्मा तिसको अविद्यादोष से अन्यों के धर्म को न जानते सन्ते तुच्छ पापी अपराधी जन्म मरणवान् विपरीतभाव से जानना । तथाच । "❀ यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितरइतरं पश्यति" । इत्यादि । सोई उस आत्मा का परम निरादर करनाहै सो आत्मा का निरादर करनाही हनन करना है । दृष्टान्त । जैसे स्त्री को पृथक्शय्यारूप निरादर करनाही उसका हनन करना शास्त्रकारोंने कहा है । तैसेही वे पुरुष कि जिन्होंने अपने आप सत्यस्वरूप को यथार्थ न जानके अरु जानने का साधन अन्तःकरण की शुद्धि तिसका साधन विहित निष्काम कर्म जो कि परम्परा करके आत्मज्ञानोत्पत्ति का हेतु है तिसको भी यथोचित न करके जीवनपर्यन्त सकाम किंवा निषिद्ध कर्मों का ही अनुष्ठान करते हैं । सो १३ । शरीर त्याग के १४ । अपने कर्मानुसार उन असुरनाम लोक में १५ । निश्चय प्राप्त होते हैं १६ । अर्थात् अज्ञानी पुरुष जो कि अविद्यादोष करके अपने सत्यस्वरूप आत्माका अनादररूपी हनन करनेवाले हैं सो

❀ बृ० उ० अ० ४ मैत्रेयी ब्रा० विषे ॥

देह त्यागके अनन्तर अपने कर्मानुसार देवता से तृणपर्यन्त शरीररूपी लोकको प्राप्त होते हैं। तथाच। "* यथाकर्म यथाश्रुतम्" ॥ ३ ॥

यहां असुरलोक कहने से जो देवलोकका भी ग्रहण है सो इस अर्थका अभिप्राय यह है जो देवताओंके लोक सो देवलोक तहां लोक कहिये शरीर अर्थात् देखते भोगते हैं कर्म के फल जहां सो लोक ऐसे जे देवशरीररूपी लोक सो स्वयंप्रकाश सर्व प्रधान सर्वोपरि परमात्मा की अपेक्षा में असुरही कहे जाते हैं क्यों जो छान्दोग्य बृहदारण्य प्रश्न इन उपनिषदों में इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओंको असुर करके वर्णन किया है एतदर्थ देवशरीरको भी असुरलोक कहतेहैं ताते देवताके शरीररूपी अदर्शनात्मक अन्धलोक सो अज्ञान अन्धकारसे आवृत हैं क्यों जो देवताओं को सदैव विषयोंकी ही लालसा रहती है सो विषयलालसा अज्ञान से होती है ताते देवता अज्ञानावृत होने से अपने आप सत्य स्वरूप आत्मा को यथार्थ जानसके नहीं। तथाच। "† देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेषधर्मः"। "‡ न मेविदुः सुरगणाः"। ताते ऐसे जे अज्ञान अन्धकारसे आवृत देव शरीररूपी असुरलोक तिन में अज्ञानी सकामी पुरुष जे विषयों की कामनासे देवाराधन करनेवाले हैं सो देहत्याग के अनन्तर प्राप्त होते हैं। अथवा जे पुरुष कामना के वशभये भूत प्रेत जड़ादिकों की आराधना करते हैं। अथवा प्रमाद करके आत्मज्ञान विहित कर्म किंवा सकामकर्म जे उत्तम मध्यम निकृष्ट स्वधर्म हैं तिनको त्यागके सदा निषिद्धकर्मों का ही अनुष्ठान करते हैं सो पुरुष अदर्शनात्मक अर्थात् नहीं होता यथार्थ विवेक आत्मानात्मवस्तु का जिस करके ऐसा जो अज्ञानरूपी अन्धकार तिस करके आच्छादितहैं पशु पाषाण वृक्षादि शरीररूपी लोक तिस बिषे देह त्याग के अनन्तर निश्चय प्राप्त होते हैं। ताते सकामकर्मी किंवा सर्वथा कर्म

---

* क० उ० के व० ५ की ७ श्रुति में। † क० उ० की १ व० की २१ वीं श्रुति। ‡ भ० गी० अ० ११ वें के श्लोक में॥

त्याग के केवल विषयसेवी पुरुष सो देहत्याग के अनन्तर अपने कर्मानुसार देवतादि तृणपर्यन्त स्थावर जङ्गमरूप अन्धतम अज्ञानावृत शरीर को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

तात्पर्य ॥

जो पुरुष मोक्षका हेतु आत्मज्ञान अरु तिसकी प्राप्ति का साधन विहित निष्काम कर्म तिन दोनों को त्याग के केवल सकाम किंवा निषिद्ध कर्मों को ही करते हैं सो पुरुष अपने आपको नाना प्रकार की योनिरूप नरक में प्राप्त करनेवाले ताते आत्महत्यारे होते हैं । एतदर्थ पुरुष को उचित है जो वेदवाक्यानुसार आत्महत्यारा न होयके यथार्थ आत्मज्ञानद्वारा अपने आपकी रक्षा करनेवाला आत्मरक्षक होय ॥

सम्बन्ध ॥

इस तृतीय मन्त्र बिषे जे पुरुष अज्ञान करके सकाम कर्म किंवा निषिद्ध कर्म करनेवाले हैं सो अपने आपका हनन करनेवाले ताते आत्महत्यारे अन्धतमको प्राप्त होते प्रतिपादन किये अब उन आत्महत्यारोंसे विपरीत विद्वान् आत्मरक्षक ज्ञानी तिस आत्मतत्त्व को साक्षात् अपना आप अनुभव करके मोक्ष होते हैं तिस आत्मतत्त्व को वेद भगवान् आगे चतुर्थ मन्त्र से विपरीत गुणवान् प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

पदान्वयः ॥

एतत् अनेजत् एकं मनसो जवीयः पूर्वं अर्षत् देवाः न आप्नुवन् तिष्ठत् तत् धावतः अन्यान् अत्येति मातरिश्वा तस्मिन् अपः दधाति ॥ ४ ॥

पदार्थ ॥

यह [आत्मा] कम्पमान नहीं एक मन से शीघ्रगामी पहले गया है देवतालोक [तिसप्रति] नहीं प्राप्तहोते अविक्रिय सोई शीघ्रचलते अन्योंको पीछे छोड़ताहै वायु अन्तरिक्षमें चलनेवाला तिसविषे कर्मों को धारता है ॥ ४ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! पूर्वकथित प्रकार के अविद्वान् आत्महत्यारे तिनसे विपर्यय जे प्रथममन्त्रानुसार आत्मरक्षक ज्ञानवान् जिस अजर अमर अक्रिय आकाशवत् सर्वव्यापी परमात्मा जिस करके चराचर जगत् आच्छादित है तिसको अपनाआप अनुभव करके तद्रूप होते हैं सो आत्मा इस मन्त्र बिषे प्रतिकूल गुणों करके कहागया है तथापि इसमें कुछ विरुद्ध नहीं क्यों जो श्रुति ने आत्मा को निश्चल भी कहा है अरु मन से भी आगे जानेवाला कहा है ताते प्रत्यक्ष विरुद्ध भाषे है तथापि कुछ विरुद्ध नहीं क्यों जो आत्मा निरुपाधि होने से आकाशवत् सर्वत्र अचल एकरस क्रियासे रहित शुद्ध कहाजाता है सोई कहते हैं ॥ यह १ । आत्मा सर्वका अपना आप अचल है २ । अर्थात् आकाशवत् सर्वक्रिया से रहित है फेर कैसा है । एकहै ३ । तथाच । "* एकमेवाद्वितीयम्" । ऐसा जो अद्वैत अचल अक्रिय आत्मा है सोई आत्मा मन से ४ । आगे जानेवाला है ५ । अर्थात् सर्व देहों बिषे अन्तःकरण की संकल्प विकल्पात्मक वृत्तिरूपी जे मन जिसको कि देह में रहत सन्ते अर्ध क्षणमात्र में देश देशान्तर किंवा अतिदूर ब्रह्मलोक पर्यन्त संकल्प द्वारा जाने की शक्ति होने से शीघ्रगामी संज्ञा दी गई है तिस मन से भी आगे जानेवाला है । अरु जहां जहां संकल्पद्वारा मन जाता है तहां तहां मन से पहिलेही ६ गया है ७ । अर्थात् जहां जहां मन जाता है तहां तहां सर्वत्र सत्तारूप सिद्ध है ताते मन से भी प्रथम गया कहते हैं

---

* छान्दोग्यउपनिषद् के छठे प्रपाठक के दूसरे खण्डकी श्रुति में ॥

तिस आत्मा को देवता ८। नहीं ९। प्राप्त होते १० अर्थात् उस आत्मा को चक्षुरादि इन्द्रियरूप देवता नहीं प्राप्त होते क्यों जो चक्षुरादि इन्द्रियों का अधिष्ठाता मन तिसका भी विषय आत्मा नहीं तब इन्द्रियों का विषय कैसे होगा कदापि न होगा इसही से कहा है जो देवता उस आत्मा को नहीं प्राप्त होते सो आत्मा अविक्रिय है ११। अर्थात् आकाशवत् परिपूर्ण अक्रिय है उसही आत्मतत्त्व के प्रकाश में मन आदि इन्द्रियां अपने २ विषयों को प्राप्त होती हैं इस हेतुसे आत्मा सर्वव्यापी सर्वत्र अक्रिय सिद्ध भया। ऐसा जो सर्वत्र एकरस अक्रिय आत्मा है। सोई आत्मा १२। आप शीघ्र चलते १३। अन्यों को १४। पीछे छोड़जाता है १५ अर्थात् आत्मा सर्वत्र एकरस अक्रिय निरुपाधिरूप से उपाधिकृत क्रियावान् सम्पूर्ण संसारकी विशेष क्रिया को अनुभवकर्ता है। अथवा अविवेकी जे मूढ़ पुरुष हैं तिनको आत्मा देह २ प्रति भिन्न भिन्न भासे है अरु तिस बिषे सर्व उपाधि के धर्म को आत्माही के धर्म मानते हैं ताते उन पुरुषों को आत्मा जन्म मरणवान् भासे है परन्तु वास्तव करके आत्मा आकाशवत् परिपूर्ण सर्वत्र सर्व क्रिया से रहित अपने आप बिषे स्थित है तिस आत्मतत्त्व बिषे १६। अन्तरिक्ष में चलनेवाला वायु १७। कर्मों बिषे १८। धारता है १९। अर्थात् जिस बिषे सर्व ब्रह्माण्ड ओतप्रोत है ऐसा जो सूत्रात्मा कि जिसके आश्रय सर्व ब्रह्माण्ड की क्रिया होती है सो आत्मतत्त्व की सत्ताके आश्रय सर्व ब्रह्माण्ड के कर्मों को अपने बिषे धारता है। तथाच। "भिषास्माद्वातः पवते" इत्यादि ॥ ४ ॥

तात्पर्य ॥

प्रथम मन्त्र करके कहा जो यह सर्व नाम रूपात्मक जगत् परमात्मा करके आच्छादित है। तिस परमात्मा का स्वरूप मुमुक्षु को भली प्रकार जानने के अर्थ इस मन्त्र बिषे उपाधि निरुपाधि द्वारा कर्ता अकर्ता आदि भाव से वेद भगवान् ने कहा है ॥

सम्बन्ध ॥

जो कि इस चतुर्थ मन्त्रसे मुमुक्षुके बोधार्थ आत्मा को उपाधि द्वारा गमनादि धर्मवान् अरु उपाधि के अभाव से सर्वधर्मरहित शुद्ध कहा है। अब इसही अर्थ को मुमुक्षु की दृढ़ता के अर्थ वेद भगवान् आगे पञ्चममन्त्र प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐतत्सत् ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्व्वस्य तदु सर्व्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

पदान्वयः ॥

तत् एजति तत् न एजति तत् दूरे तत् उ अन्तिके तत् अस्य सर्व्वस्य अन्तः तत् उ अस्य सर्व्वस्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

पदार्थ ॥

सो आत्मा चलताहै सोई नहीं चलता सोई दूरहै सोई आत्मा समीपहै। सोई इस सर्वके अन्तरहै सोई आत्मा इस सर्वके बाहर है ॥ ५ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य! पूर्व चतुर्थमन्त्र बिषे आत्मा जो कि सर्व उपाधिसे रहित केवल केवलीभाव अपने आप बिषे ज्यों का त्यों कहा तिस आत्मा को उपाधि निरुपाधि द्वारा प्रतिकूल गुणों से सर्वत्र सिद्ध किया ताते सर्व प्रकार एक विज्ञानघन आत्माही है। तिस आत्मा बिषे उपाधि निरुपाधि का आरोप केवल मुमुक्षु को समझावने के अर्थ वेद ने कहा है ॥ अब पुनः मुमुक्षु के दृढ़ बोधार्थ इस पञ्चममन्त्र बिषे आत्मा को प्रतिकूल गुणों करकेही प्रतिपादन करते हैं ॥

हे सौम्य! सोई आत्मा १। चलता है २। अर्थात् जङ्गमशरीररूपी उपाधि साथ मिलके गमनागमन क्रियावान् भासता है ताते चलता है।

अथवा लिङ्गशरीररूपी उपाधि साथ मिलके स्वर्ग नरकादिकों बिषे जाता आवता प्रतीत होता है सो सर्व उपाधि के धर्म अज्ञान के आश्रय आत्मा बिषे कल्पना करते हैं 'जैसे बालक मेघों की धावमानता को देखके अज्ञान के आश्रय चन्द्रमा को चलता कहते हैं' तैसेही अज्ञान के आश्रय शरीरादि उपाधि के धर्म शुद्ध निरुपाधि आत्मा बिषे मानते हैं परन्तु आत्मा सर्वउपाधि से रहित अक्रिय है सो उपाधिद्वारा चलता है अरु । सोई आत्मा ३ । नहीं ४ । चलता ५ । अर्थात् जो आत्मा देहादि उपाधि साथ मिलके चलता है सोई उपाधि के अभाव से नहीं चलता । जो विद्वान् आत्मवेत्ता हैं सो * "नेतिनेति" श्रुतिके वाक्य करके सूक्ष्म स्थूल सर्वउपाधिको गिराय महासूक्ष्म आत्मतत्त्व को आकाशवत् अचल अक्रिय सर्वत्र अनुभव करते हैं ताते वास्तव करके आत्मा नहीं चलता अरु । सोई आत्मा ६ । दूर है ७ । अर्थात् अज्ञानी पुरुषों को आत्मतत्त्व अपना आप होत सन्तेभी शतकोटि वर्ष पर्यन्त भी ज्ञान विना प्राप्त नहीं ताते दूर है । अथवा ब्रह्मलोकादि यावत् लोकलोकान्तर हैं तहां पर्यन्त भी जाने से ज्ञान विना अप्राप्य है ताते आत्मा दूर है । अथवा आत्मतत्त्व मन बुद्धि इन्द्रियादिकों का विषय नहीं एतदर्थ भी दूर है । तथा च † "दूरात्सुदूरे" ताते अज्ञानी पुरुषों को आत्मा दूरसे भी दूर है अरु सोई ८ । आत्मा ९ । समीप है १० अर्थात् जो आत्मा अज्ञानियों को दूर से भी दूर है सोई आत्मा यथार्थदर्शी ज्ञानवान् को समीप है सो कैसा समीप है । तथाच । ‡ "निहितोगुहायाम्" । बुद्धिरूपी गुहा बिषे सर्व का अपना आप अनुभवी स्थित है ताते अत्यन्त समीपहै । अरु सोई ११ । इस १२ । सर्वके १३ । अन्तर है १४ । अर्थात् जो आत्मा विद्वानों का अपनाआप है सोई

---

* बृहदारण्यउपनिषद् के द्वितीयाध्याय मूर्तामूर्त ब्राह्मण बिषे । † कठवल्ली उपनिषद् की द्वितीयावल्ली की २० वीं श्रुति में । ‡ क० उ० की वल्ली २ की २० श्रुति में ॥

सम्पूर्ण चराचर का अन्तर अनुभवकर्ता अपना आप है। तथाच *"आत्मासर्वान्तर" ताते आत्मा इन सर्व के अन्तर है। अरु सोई १५। आत्मा १६। इन १७। सर्वके १८। बाहर है १९। अर्थात् जो आत्मा सर्वके अन्तर है सोई आत्मा आकाशवत् आकाशादि सर्व के बाहर है तथाच × "सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः" ॥ ५ ॥

तात्पर्य ॥

आत्मा को चलता न चलता दूर समीप अन्तर बाहर सर्वत्र प्रतिपादन किया सो केवल मुमुक्षु के बोधार्थ उपाधि का आरोप लेके सर्व प्रकार एक आत्मतत्त्वही प्रतिपादन किया है कि जिससे मुमुक्षु का द्वैतभाव अशेष अभाव होय सर्वप्रकार एक अद्वैत आत्मतत्त्व के निश्चयपूर्वक परमशान्ति प्राप्त होय ॥

सम्बन्ध ॥

चतुर्थ अरु पञ्चम इन दोनों मन्त्र से उपाधि निरुपाधिद्वारा विशेष निर्विशेष करके एक अद्वैत आत्मतत्त्व प्रतिपादन किया। अब आगे मुमुक्षु के अर्थ आत्मविचार की रीति अरु तिसका फल मोक्ष दो मन्त्र करके वेदभगवान् प्रतिपादन करते हैं ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

पदान्वयः ॥

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति च सर्वभूतेषु आत्मानं ततः न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

पदार्थ ॥

जो कोई सर्व भूतोंको आत्माविषेही देखता है फेर सर्व भूतोंविषे आत्माको ताते नहीं घृणाकरता है ॥ ६ ॥

---

* बृ० उ० के अ० ३ अन्तर्यामी ब्रा० में। × मुण्डक उपनिषद् के तृतीय मुण्डक की दूसरी श्रुति में॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! जो कोई मुमुक्षु आत्मज्ञानी कि जिसको अपना आप आत्मा संशय विपर्यय से रहित ज्योंका त्यों अनुभव भया है सो १-२। सर्व ३। भूतों को ४। आत्मा बिषे ५। ही ६। देखता है ७। अर्थात् जो कोई आत्मानुभवी पुरुष है सो अव्याकृत से तृणपर्यन्त सर्व कार्य-कारणात्मक भूतों को आत्माबिषेही देखता है। 'जैसे जलबिषे तरंग तैसे'। पुनः ८। सर्व ९। भूतों बिषे १०। आत्मा को ११। देखता है। अर्थात् जैसे सर्वभूतोंको अपनेआप बिषे तैसेही सर्वभूतोंबिषे एक अपने आप आत्माको देखता है। 'जैसे सर्वतरङ्ग बुदबुदादिकों बिषे एक जल को देखताहै'। इस प्रकार जलतरङ्गके दृष्टान्त प्रमाण आत्माबिषे जगत् अरु जगत्बिषे आत्माको देखताहै सो। ऐसे देखनेसों १२। नहीं १३। घृणा [ग्लानि] करता १४। अर्थात् ग्लानिआदि द्वैतभाव बिषे होते हैं सो द्वैतभाव अविद्याकरके होता है। तथाच * "यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितरइतरम्पश्यति"। अर्थात् अविद्या करके द्वैतभाव अरु द्वैत भाव बिषे ग्लानि आदि होते हैं सो अविद्या आत्मज्ञानी की अशेष निवृत्त भई है तातेही द्वैतभाव का अभाव भया है इसही से एक अ-द्वैत आत्मभाव निश्चय भया है सो आत्मा सदा शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभाव है इसहीसे ग्लानिआदि नहीं करता। तथाच। † "यस्तु सर्वमात्मै-वाभूत्तत्केनकम्पश्येत्"॥ इत्यादि ॥ ६ ॥

तात्पर्य ॥

जो ज्ञानवान् सम्पूर्ण जगत् को केवल एक अपना आप आत्माही जानता है सो तिस अभ्यास के बल से किसी पदार्थ की ग्लानि आदि नहीं करता अर्थात् जिसप्रकार ज्ञानी आत्मवेत्ता सर्वात्मभाव के दृढ़ अभ्यास से ग्लानिआदि नहीं करते तैसेही सर्व मुमुक्षु को एकात्मविचार के अभ्यासबलसे किसी भी पदार्थ बिषे रागद्वेषादि कुछ भी कर्तव्य नहीं॥

---

* बृ० उ० के अ० ४ में ब्रा० बिषे। † बृ० उ० के षष्ठ अध्याय बिषे॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्रबिषे मुमुक्षु को सर्वात्मभाव देखाय सूचना किया कि आत्म-अभ्यासवाले को किसी पदार्थमें भी ग्लानिआदि कर्तव्य नहीं। अब ७ वें मन्त्र करके सर्वात्मअभ्यासी को वेद भगवान् मोक्ष का स्वरूप कहते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

यस्मिन् सर्व्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कःशोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

पदान्वयः ॥

विजानतः यस्मिन् सर्व्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् एकत्वं अनुपश्यतः तत्र कः मोहः कः शोकः ॥ ७ ॥

पदार्थ ॥

भलीप्रकार जाननेवाले को जिसकाल में सम्पूर्ण भूतों को आत्मा ही है एकत्व देखनेवालेको तिसकालमें क्या मोह क्या शोक ॥ ७ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! पूर्वकथित आत्मा को वेद गुरु अरु अपने अनुभव द्वारा भलीप्रकार जाननेवाले को १। जिस कालमें २। सम्पूर्ण ३। भूतों को ४। आत्मा ५। ही ६। है ७। अर्थात् आत्मकामा मुमुक्षु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वारा श्रुति के। ❀ " सर्व्वंखल्विदंब्रह्म " † " नेह-नानास्तिकिञ्चन "। इत्यादि वाक्यों करके साक्षात् अपने अनुभव से जिसकालमें यावत् स्थूल सूक्ष्म कार्यकारणात्मकसर्व भूतोंको ‡ "आत्मै-वेदंसर्वं " श्रुति के प्रमाण से अपना आप आत्माही है ऐसा जानता है। अरु ऐसा जानके एकत्व ८। देखनेवाले को ९। तिसकालमें १०। क्या ११। मोह १२। क्या १३। शोक १४। अर्थात् जिस प्रकार श्रुतियों

❀ छां० उ० प्र० ४ विषे। † बृ० उ० के अ० ६ विषे। ‡ छां० उ० के प्र० ७ विषे।

के वाक्य आचार्य द्वारा श्रवण करके अपने आत्मा को सर्वत्र आत्मभाव से अनुभव किया है तिस आत्मतत्त्व का एकत्व देखता है ' जैसे घट मठ सराव ले आदि यावत् मृत्तिका के कार्य हैं तावत् व्यवहार दृष्टि से सर्व के नामरूप क्रिया पृथक् २ भासे हैं परन्तु परमार्थ दृष्टि से घट मठादिकों के नामरूप मृत्तिका बिषे " ✽ वाचारम्भणं विकारोनामधेयं " वाचारम्भणमात्र अर्थात् कल्पित हैं † " मृत्तिकेत्येव सत्यम् " एक मृत्तिकाही सत्य है । तैसेही सम्पूर्ण नाम रूपात्मक जगत् व्यवहार दृष्टि से पृथक् २ भासे है परन्तु वास्तव में परमार्थ दृष्टि से । ‡ " एषोन्तरात्म्यमिदꣳसर्वम् " सम्पूर्ण चराचर एक आत्माही है । इस प्रकार श्रुतियों के वाक्य प्रमाण अपने आप अनुभव से सर्वत्र आत्माही के एकत्व का निश्चयपूर्वक दृढ़ अभ्यास करता है तिस काल में अर्थात् जब कि अभ्यास द्वारा अन्तःकरण की सर्वात्मभावरूपा वृत्ति दृढ़ उदय होती है तिस विज्ञानावस्था में क्या मोह और क्या शोक किन्तु कुछभी नहीं क्यों जो + । " तरति शोकमात्मवित् " । आत्मा को जाननेवाला शोकको तरता है । अर्थात् जिस पुरुष ने सर्वत्र एक अपने आप आत्माही को अनुभव किया है अरु तिस बिषे अभ्यास द्वारा स्थिति पाया है सो पुरुष शोक मोहादिकों से तरजाता है । ताते आत्मवेत्ता को शोक मोहादि नहीं क्यों जो शोक मोहादिकों का कारण जे कामना सो तो ज्ञानवान् की " इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः " यहां विज्ञान अवस्था में ही सर्व कामना अभाव होजाती है । अरु कामना का कारण अविद्या है सो ज्ञानवान् की अविद्या आचार्य से तत्त्वमस्यादि उपदेश पावतेही अपने कार्य कामना अरु तज्जन्य शोक मोहादि सहित अभाव होजाती है । इसही हेतु से जिस ज्ञानवान् को सर्वत्र एक अपना आप आत्मा ही निश्चय भया है तिस महात्मा को शोकमोहादि कदापि नहीं ॥ ७ ॥

✽ † छां० उ० प्र० ६ की प्रथमश्रुति में । ‡ छां० उ० के प्र० ६ के ८वें खण्ड की श्रुति में । + छां० उ० प्र० ७ वें के प्रथमखण्ड की श्रुति में ॥

तात्पर्य ॥

"यस्तुसर्व्वाणिभूतानि" यहां से लेके "एकत्वमनुपश्यतः" यहां पर्यन्त ६—७ दो मन्त्र हैं तिनमें सातवें मन्त्र का तृतीयपाद "तत्र को मोहः कः शोकः" जो कि अन्वय की रीति से चतुर्थ पाद है तिसको छोड़के चारपाद छठे मन्त्र के अरु तीनपाद सातवें मन्त्र के इसप्रकार सातपाद पौनेदो १॥। मन्त्र करके वेद भगवान् ने मुमुक्षु के अर्थ आत्मविचार की रीति संक्षेपमात्र सूचन किया है। अरु सातवें मन्त्र के तृतीय पाद करके वेद भगवान् ने ज्ञानवान् के बिषे शोक मोह का अभावरूप लक्षण अरु सोई मुमुक्षु के अर्थ फल कहा है क्योंकि ज्ञानवान् के बिषे अविद्याकी निवृत्तिका लक्षण शोक मोहादिकों का न होनाही है। अर्थात् अज्ञान का कार्य शोक मोहादि सोई अज्ञान का लक्षण ताते अज्ञान के लक्षण जे शोक मोहादि तिनकी जो निवृत्ति सोई अज्ञान की निवृत्ति का लक्षण ताते ज्ञानवान् के बिषे अज्ञान के कार्य जे शोक मोहादि तिनके अभाव द्वारा अज्ञान की निवृत्ति मानके तिसको बुद्धिमान् ज्ञानी कहते हैं। ताते शोक मोह का न होना भी ज्ञानवान् के लक्षण हैं। अरु मुमुक्षु जब जानता है कि "तरति शोकमात्मवित्" आत्मवेत्ता शोक को तरता है तब शोक तरने के अर्थ आत्मज्ञान का जिज्ञासु होय आचार्य के समीप जाय श्रुति के तत्त्वमस्यादि वाक्यद्वारा यथार्थ आत्मज्ञान पाय शोक मोहादिकों से रहित होता है ताते मुमुक्षु को आत्मज्ञान का फल शोक मोहादिकों का अभाव होनाही है ताते "तत्र को मोहः कः शोकः" इस पाद करके शोक मोहादिकों का जो अशेष भाव सोई ज्ञानवान् के लक्षण अरु मुमुक्षु को आत्मज्ञान का फल कहा। अरु शोक मोह के अभाव कहने से यावत् अविद्या का कार्य है तावत् सबका अभाव ग्रहण होता है क्यों जो वेद का कहना आक्षेपपूर्वक है क्योंकि सर्वात्मभाव से आत्मा का अनुभव करनेवाले जे पुरुष हैं सो ज्ञानवान् आत्मवेत्ता

तिन में यथार्थ ज्ञान करके अविद्या अरु तज्जन्य द्वैतभाव तिसका निःशेष अभाव भया है तहां शोक मोह कहां किन्तु कदापि नहीं । ताते ज्ञानवान् के बिषे शोक मोह उपलक्षण करके षट्ऊर्मी सहित अविद्या का अभाव समझना । तहां शोक मोह मनकी ऊर्मी, क्षुधा पिपासा प्राण की ऊर्मी, जन्म मरण देह की ऊर्मी । ताते यह षट्ऊर्मी मन प्राण शरीर की हैं आत्मा की नहीं आत्मा सर्वऊर्मी से रहित केवल शुद्ध विज्ञानघन आकाशवत् अपने बिषे आप स्थित है । एतदर्थ पूर्वकथितप्रकार से एषणात्रय के त्यागपूर्वक षट्ऊर्मी से रहित जो शुद्ध स्वयंप्रकाश आत्मा तिसकी सर्वात्मभाव से अपने आप बिषे अभेदभावना कि सो सर्वात्मा मैं हौं । अर्थात् यह जो अन्तःकरण की अहंकाररूपा निश्चयात्मकवृत्ति कि सो सर्वात्मा मैं हौं तिसको गिराय के शुद्ध चैतन्यघन अफुर स्वयंप्रकाश सर्वविशेषता से रहित साक्षात् अपने आप बिषे आप होता है ऐसे दृढ़ अभ्यासवाले जे ज्ञानवान् । "[3]न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" "[1]तत्रैवसमवनीयन्ते" "[2]ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति" तिसके प्राण देहावसानसमयमें देह से न निकलके तहांही अपने अधिष्ठान चैतन्य आत्मा बिषे लीन होते हैं ताते ज्ञानवान् जो आत्मअध्यासी पुरुष सो सर्व उपाधि से रहित जहां है तहां ब्रह्मही है । तथाच " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्र बिषे मुमुक्षु को आत्मविचार कहके आत्मज्ञान का फल शोक मोहादि सर्व विकार अरु तिनका कारण अविद्या तिसके अभावपूर्वक मोक्ष कहा अब ज्ञानवान् ब्रह्मआत्मा की एकतारूप अध्यास के बल से अन्त में देह से न निकलके यहांही इस शरीर में जिस ब्रह्म साथ मिलके ब्रह्मही होता है तिस परमात्मा परब्रह्म का स्वरूप विधिमुख

१-२ बृ० उ० अ० ६ के शारीरक ब्रा० की ५ श्रुति में । ३ बृ० उ० के में ॥

अरु निषेधमुख करके वेद भगवान् आगे अष्टम मन्त्र करके प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः । स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

पदान्वयः ॥

शुक्रं अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम् सः पर्य्यगात् कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः शाश्वतीभ्यः समाभ्यः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् ॥ ८ ॥

पदार्थ ॥

शुद्ध कायारहित छिद्ररहित शिरारहित निर्मल पापरहित है सो व्यापकहै क्रान्तदर्शी मनका ईश सर्वोपरि स्वयंविद्यमान यथाभूतकर्मफल साधनसे अनन्त कालस्थायी प्रजापतिके अर्थ पदार्थों को विभाग करताभया ॥ ८ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! पूर्वकथित प्रकार जे मुमुक्षु एषणासे रहित होयके श्रुतियों के । " ❀ स आत्मातत्त्वमसि " ‡ " अयमात्माब्रह्म " † " एतद्वैतत् " + " तत्त्वमेव त्वमेवतत् " । इत्यादि वाक्यों प्रमाण ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अभ्यास करनेवाला सो जिस परमात्मा साथ ' नदी समुद्रवत् ' अभेद होताहै सो परमात्मा हे सौम्य ! शुद्ध है १ । अर्थात ज्योतिमय दीप्यमान स्वयंप्रकाश है । पुनः कैसा है कायारहित अकाय है २ । अर्थात् समष्टि सूक्ष्म उपाधि लिङ्गशरीर (पुर्यष्टिका) अरु व्यष्टि सूक्ष्म उपाधि महत्तत्त्वादि अष्ट प्रकृति विकृति अथवा समस्त सूक्ष्म शरीरों की समष्टता हिरण्यगर्भ । अर्थात् सूक्ष्म शरीररूपी व्यष्टि समष्टि उपाधि

❀ छांदोग्य, ‡ मांडूक्य, † कठवल्ली, + कैवल्य, उपनिषदों विषे ॥

से रहित ताते अकाय है। पुनः कैसा है छिद्ररहित अछिद्र है ३। अर्थात् इन्द्रियों के गोलकरूपी छिद्र तथा फोड़ा इनसे रहित है। पुनः कैसा है शिरारहित अशिरा है ४। अर्थात् शिरा कहिये नाड़ी तिन करके भी रहित है यहां छिद्र अरु नाड़ियों के कहने से व्यष्टि स्थूलशरीररूपी उपाधि अरु समष्टि विराट् शरीररूपी स्थूलउपाधि तिनसे रहित है। पुनः कैसा है शुद्ध है ५। अर्थात् मूलप्रकृति माया अरु तिसका कार्य तिनसे रहित शरत्काल के आकाशवत् निर्मल सदा शुद्ध है। पुनः कैसा है पापरहित अपाप है ६। अर्थात् धर्म, अधर्म, कर्ता, अकर्ता, पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, जन्म, मरण, दुःख, सुख, बन्ध, मोक्ष आदि यावत् द्वन्द्वरूपी पाप हैं तिन सर्वसे रहित अपाप है । सो ७। अर्थात् जो परमात्मा सर्वउपाधि से रहित सदाशुद्ध प्रतिपादन कियाहै सो परमात्मा व्यापक है ८। अर्थात् आकाश से भी महासूक्ष्म आकाशादि सर्वविषे व्याप्त है ॥ हे सौम्य! जो परमात्मा सर्व उपाधि से रहित परमशुद्ध जिसको श्रुतियों ने " † अस्थूलमनएव ह्रस्वमदीर्घमलोहित " इत्यादि नेति नेति द्वारा निषेध मुख प्रतिपादन किया है सोई सर्वव्यापी परमात्मा को इस मन्त्र के पूर्वार्ध " शुक्रमकायमव्रणं " इत्यादि करके निषेध मुख प्रतिपादन किया है अब उसही परमात्मा को इसही मन्त्र के उत्तराध करके विधि मुख द्वारा सविशेष प्रतिपादन करतेहैं हे सौम्य! जो परमात्मा सर्व उपाधि से रहित सदाशुद्ध आकाशवत् सर्वव्यापी कहा है सोई परमात्मा। कवी ९। अर्थात् क्रान्तदर्शी सर्वका द्रष्टाहै। तथाच। ❀ " नान्यतोऽस्ति द्रष्टेत्यादि " । पुनः कैसा है मनीषी १०। मन का जाननेवाला सर्वज्ञ ईश्वर है। पुनः कैसा है सर्व के ऊपर है ११। अर्थात् आकाशादि किसी करकेभी आच्छादित न होत सन्ते आकाशादि सर्वको आच्छादन करनेवाला सर्वकी प्रथमावधि है ताते सर्व के ऊपर

† यह बृहदारण्य उ० के ४ वें अध्याय के ८ वें ब्राह्मण विषे। ❀ बृ० उ० के अ० ४ वें के अष्टमब्राह्मण की ११ श्रुति में॥

है। अथवा सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, काल, दिशा, देव, पितृआदि भूत भौतिक यावत् जगत् है तिस सर्व के ऊपर सर्वका नायक सर्व को अपनी आज्ञा में चलावनेवाला है ताते सर्वके ऊपर है। तथाच "। × एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृत तिष्ठति "। इत्यादि। पुनः कैसा है स्वयम्भू है १२। अर्थात् आकाशादि जिनके २ ऊपर है सो सर्व अपनी इच्छा से आपही हुआ है अरु आप स्वतःसिद्ध है ताते स्वयम्भू है। ऐसा जो स्वयम्भू सर्वोपरि सर्वज्ञ स्वयम्प्रकाश सर्व का द्रष्टा नित्यशुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव परमात्मा परमेश्वर है सो। अनन्त काल, स्थायी १३। संवत्सर के अर्थ १४। अर्थात् संवत्सरनाम प्रजापति के अर्थ। यथा भूतकर्म फल साधन से १५। अर्थों को १६। अर्थात् कर्तव्य पदार्थों को जो कि अग्निहोत्रादि रूपसे कर्तव्य हैं। यथा विभाग से करता भया १७॥ ८॥

तात्पर्य ॥

"। ईशावास्यमिदꣳसर्वं "। इस प्रथम मन्त्र करके परमात्मा अरु तिसकी प्राप्ति का साधन एषणात्रय से रहित संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान मुमुक्षु के अर्थ सूचना किया १। अरु "। कुर्व्वन्नेवेह कर्माणि"। इस दूसरे मन्त्र करके एषणात्रय के त्यागपूर्वक आत्मअध्यास में असमर्थ पुरुष को कर्मबन्धनों की निवृत्ति के अर्थ विहित निष्काम अग्निहोत्रादि कर्म कर्तव्य प्रतिपादन किया २॥ अरु। "असूर्य्यानामतेलोकाः"। इस तृतीय मन्त्र करके पूर्व कथित उभय का जो त्यागी पुरुष है अर्थात् आत्म अध्यास अरु विहित निष्काम कर्म जो कि उत्तम मध्यम रीति से परमार्थ का हेतु हैं तिनको त्यागके केवल सकाम अथवा निषिद्ध कर्मों को ही करते हैं तिन पुरुषों को अपने कर्मानुसार असुरलोक प्राप्ति द्वारा तिनकी निन्दा प्रतिपादन किया ३॥ अरु इन तीन मन्त्रों में तीन प्रकार के अधिकारी सूचित किये तहां प्रथम मन्त्रप्रमाण आत्माध्यासी

× बृ० उ० के अ० ५ वें के अष्टमब्राह्मण की ६ श्रुति में॥

पुरुष मोक्ष का भागी उत्तमाधिकारी । अरु दूसरे मन्त्र प्रमाण विहित निष्काम कर्मकर्ता पुरुष ब्रह्मलोक का भागी मध्यम अधिकारी । अरु तृतीय मन्त्र प्रमाण केवल सकाम अरु निषिद्धकर्मसेवी अधर्मी असुरलोक अरु अन्धतम के भागी आत्महत्यारे पुरुष निकृष्ट अरु अधम अधिकारी प्रतिपादन किये ॥ अब प्रथम मन्त्र करके आत्मरक्षार्थ जिस परमात्मा की अभेद भावनारूप अभ्यास सो उत्तमाधिकारी मुमुक्षु के अर्थ कहा है तिस परमात्मा को भलीप्रकार से जाननेके अर्थ " अनेजदेकं " अरु " तदेजति " ४–५ इन चतुर्थ पञ्चम दो मन्त्र करके प्रतिपादन किया । अरु उस परमात्मतत्त्वके विचार अध्यासकी रीति मुमुक्षुके अर्थ " यस्तुसर्वाणिभूतानि " अरु " यस्मिन्सर्वाणिभूतानि " ६–७ इन षष्ठ सप्तम दो मन्त्र करके प्रतिपादन किया । अरु सप्तम मन्त्र के तृतीय पाद करके शोक मोह के अभावद्वारा ज्ञानवान् को सम्यक्ज्ञान प्राप्ति का लक्षण देखाया । अरु मुमुक्षु पुरुष सर्वात्मभावनारूप से ब्रह्म आत्मा की अभेद भावनारूप अभ्यास से परमात्मा के साथ " ❀ यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् " इत्यादि श्रुतिप्रमाण से नदीसमुद्रवत् भेद से रहित अभेद एक होता है तिस परमात्मा का स्वरूप "सपर्यगाच्छुक्रमकायं" इस अष्टम मन्त्र करके निषेधमुख अरु विधिमुख प्रतिपादन किया अर्थात् " † ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति " ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मही होता है । सो कहके ब्रह्म का स्वरूप ज्ञानवान् की परम गति देखाय प्रथम मन्त्र के अनुसार अधिकारी मुमुक्षु ज्ञानवान् का प्रकरण चतुर्थ से अष्टम मन्त्र पर्यन्त पांच मन्त्र करके वेद भगवान् ने प्रतिपादन किया ॥ यहां पर्यन्त इस उपनिषद् का पूर्वार्ध प्रतिपादन करके आगे मध्यम अरु कनिष्ठ अधिकारीका प्रसंग नवम ९ मन्त्र से अष्टादश १८ मन्त्र पर्यन्त अर्थात् ग्रन्थ की पूर्णतापर्यन्त दश १० मन्त्र

❀ † यह मुण्डक उपनिषद् के षष्ठ मुण्ड की ८–९ श्रुतियों में ॥

करके वेद भगवान् इस उपनिषद् का उत्तरार्ध प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सदिति शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनिशाखा के ईशावास्य मन्त्रोपनिषद् के पूर्वार्ध की भाषा टीका समाप्त शुभम् ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्र बिषे परमात्मा को निषेध अरु विधिमुख द्वारा प्रतिपादन करके प्रथम मन्त्रानुसार उत्तमाधिकारी ज्ञानवान् का प्रसंगप्रकरण समाप्त किया। अब आगे मध्यमअधिकारी अरु कनिष्ठ अधमाधिकारी का प्रसंग चलेगा तहां प्रथम मध्यमाधिकारी का प्रसंग न कहके कनिष्ठ अधमाधिकारी जे तृतीयमन्त्र करके आत्महत्यारे कहे हैं तिनकी जो परलोक गति तिसको पुनः नव ९ वें मन्त्र करके वेदभगवान् प्रतिपादन करते हैं ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳬं रताः ॥ ९ ॥

पदान्वयः ॥

ये अविद्याम् उपासते [ते] अन्धं तमः प्रविशन्ति ये उ विद्यायाम् रताः ते ततः भूय इव तमः [प्रविशन्ति] ॥ ९ ॥

पदार्थ ॥

जे पुरुष अविद्या को उपासते हैं [सो] अदर्शनात्मक अज्ञान में प्रवेश करते हैं [अरु] जे कोई विद्याबिषे रत हैं सो तिससे भी अधिक ऐसे तम में [प्रवेशकरते हैं] ॥ ९ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य! जे १। अविवेकी सकाम पुरुष अविद्या की २। उपासना करते हैं ३। अर्थात् ब्रह्मविद्या से विपर्यय जो अविद्या अग्निहोत्रादि लक्षणरूप कर्म सो फल प्राप्ति के अर्थ निरन्तर अनुष्ठान करते हैं सो अदर्शनात्मक ४। अज्ञानरूपी अन्धकार में ५। प्रवेश करते हैं ६।

अर्थात् जे पुरुष कामना सहित अग्निहोत्रादि कर्म का अनुष्ठान करते हैं सो स्वर्गादिकों में स्वकर्म के फल को भोगते नहीं हैं अपने आत्मा की दर्शन योग्यता जिनमें ऐसे जे अदर्शनात्मक अज्ञानावृत शरीर तिन बिषे प्रवेश करते हैं। तथाच। × "इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविशन्ति"। अरु जे कर्म कामना सहित किये जाते हैं सोई संसार का हेतु हैं। तथाच। ※ "आत्मैवेदमग्रआसीदेक एव सोऽकामत जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्मकूर्वी"। इत्यादि, अर्थ यह जो प्रथम ब्रह्मा अकेला आप होके आप को वैभववान् होने के अर्थ स्त्री पुत्र वित्तादिकों की कामना करके कर्म करनेकी इच्छा करता भया। ताते सकाम कर्म संसार प्रवृत्ति का हेतु है अरु संसारही अदर्शनात्मक अनात्म अन्धकाररूप अज्ञान है। तिस अनात्म अज्ञान में प्रवेश होय जिन कर्मों से सो कहिये अविद्या। ताते अविद्या जे सकाम अग्निहोत्रादि कर्म तिनका निरन्तर अनुष्ठान करनेवाले अविवेकी सो कामना के वशभये अपने आपको अन्धतम में प्राप्त करनेवाले आत्महत्यारे अज्ञानी वे प्रवेश करते हैं॥ अरु जे पुरुष ८। विद्याबिषे ९। रतहैं १०। अर्थात् देवता ज्ञान करके जे भेद उपासना करनेवाले जो कि वास्तव करके देवताओं को अपने से अरु अपने से देवताओं को अन्य मानके उपासना करते हैं। वे ११। सकाम कर्म करनेवालों से भी १२। अधिक १३। ऐसे १४। अन्धतम में १५ प्रवेश करते हैं। अर्थात् जो वास्तविक स्वरूप में भेद मानके देवोपासना करनेवाले भेदी उपासक हैं तिनको वेद भगवान् ने पशु करके प्रतिपादन किया है। तथाच। † "अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशु परेवथं देवानाम्"। ताते विद्या शब्द करके जो भेद उपासना तिसके कर्ता जे भेदी उपासक

× यह मुण्डक उ० के प्रथम मुण्डके द्वितीय खण्डकी १० श्रुति। ※ बृ० उ० के अध्याय १ के ब्रा० में। † बृ० उ० के अ० १ के १० अनु०॥

कनिष्ठ अधिकारी हैं वे अत्यन्त अदर्शनात्मक अज्ञानावृत शरीरोंको प्राप्त होतेहैं॥ अथवा जे पुरुष लोकदृष्टिमात्र विद्या जो ब्रह्मविद्या तिसविषे रत भासते हैं अरु कथन भी उसहीका करते हैं परन्तु आत्मअभ्याससे रहित अन्तःकरण में नानाप्रकार की विषयवासना को चोरोंवत् छिपाय अन्तर में लेरहे हैं अरु आपको ज्ञानवान् अकर्ता मानके इस असत्यज्ञान के आश्रय विहित अग्निहोत्रादि कर्म जोकि अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान के साधन हैं तिनका त्याग करते हैं अरु निषिद्ध जे पान मैथुनादि कर्म तिन बिषे अहर्निश प्रवृत्त रहते हैं। ऐसे जे अन्तर से शिश्नोदरपरायण अत्यन्त अविवेकी बाह्य मुद्रा से ज्ञान बिषे रत भासनेवाले पुरुष हैं वे स्वर्गादि सर्व उत्तम लोकों से भ्रष्ट होय अत्यन्त करके अदर्शनात्मक अन्धतम केवल अज्ञानावृत वृक्ष पाषाणादि किंवा श्वान, शूकर, कीट, पतङ्ग, मशकादि शरीररूपी लोक बिषे प्रवेश करते हैं। तथाच। * "अथ य इह कपूयचरणा अभ्यासो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥ अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्व इति"॥ तथाच † "कुशला ब्रह्मवार्त्तायां वृत्तिहीनाश्च ये नराः। न ते तत्पदमाप्स्यन्ति पुनरायान्ति यान्ति च"॥ ६॥

तात्पर्य॥

पूर्व तृतीय मन्त्र करके जे आत्महत्यारे कहे हैं वे इस नवम मन्त्र करके विद्या अविद्याद्वारा दो प्रकार के कहके तिनके अर्थ अर्थात् कामुक कर्म करनेवाले अरु सर्वथा कर्म त्यागनेवाले अत्यन्त अज्ञानी इन दोनों कनिष्ठ अरु अधम अधिकारियोंकी देह त्यागान्तर जो अन्धतम अरु अधिक अन्धतम लोककी प्राप्तिरूपी गति प्राप्त होती है सो प्रतिपादन किया है। सो इस कहने से जे मोक्षार्थी मुमुक्षु हैं तिनको

* छां० उ० के ५ प्र० पञ्चाऽग्नि विद्याकी ७-८ वीं श्रुति। † पञ्चदशी ग्रन्थ बिषे॥

वेद भगवान् दया करके सूचना करते हैं जो अन्धतम अरु अधिक अन्धतम को प्राप्त करनेवाले ऐसे जे कामुक अरु निषिद्ध कर्म तिनको अशेष त्यागके निष्काम विहित कर्मोंद्वारा अन्तःकरण की शुद्धतापूर्वक आत्मअभ्यासही कर्तव्य है ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्र बिषे कनिष्ठ अरु अधमाधिकारी को विद्या अरु अविद्या करके अन्धतम अरु अधिक अन्धतम की प्राप्ति प्रतिपादन किया । अब कहे वाक्य की दृढ़ता के अर्थ वृद्धों की साक्ष्यपूर्वक वेद भगवान् आगे दशममन्त्र को प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्य देवाहुरविद्यया । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

पदान्वयः ॥

विद्यया अन्यत् एव आहुः अविद्यया अन्यत् एव आहुः ये नः तत् विचचक्षिरे धीराणां इति शुश्रुम ॥ १० ॥

पदार्थ ॥

विद्या करके [फल] अन्य ही कहते हैं [अरु] अविद्या करके [फल] अन्यही कहते हैं जे हमको कर्म तथा ज्ञान कहतेहुए [तिन] धीरपुरुषों का वचन ऐसे श्रवण किया है ॥ १० ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! विद्या करके १ । फल अन्य २ । ही ३ । कहते हैं ४ । अर्थात् विद्या का फल औरही है ऐसा कहते हैं । अरु अविद्या करके ५ । फल अन्य ६ । ही ७ । कहते हैं ८ । जो बुद्धिमान् पुरुष ९ । हम को १० । कर्मज्ञान का ११ । उपदेश करतेहुए १२ । तिन धीरपुरुषों का वचन १३ । ऐसे १४ । श्रवण किया है १५ । अर्थात् जिन ज्येष्ठ श्रेष्ठ विद्वानों करके विद्या अविद्या अरु तिनके अधिकारी अरु तिनके फल

का विस्तार विवेचन हुआ है तिन धीर पुरुषोंका वचन ऐसा श्रवण किया है कि विद्या का फल और है अरु अविद्या का फल और है ॥ १० ॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्र बिषे विद्या का फल और अरु अविद्या का फल और कहा है। अर्थात् विद्या के जे उपासक हैं अरु अविद्या के जे उपासक हैं तिन दोनों को उपासना के अनुसार फल भिन्न २ दो दो प्रकार के हैं तहां एक २ प्रकार से विद्या अरु अविद्या का फल अरु तिनके अधिकारी जोकि तृतीयमन्त्र बिषे आत्महत्यारे करके कनिष्ठ अरु अधम कहे हैं सो कहां । अर्थात् अविद्या करके सकाम कर्म अरु तिनका फल अन्धतम में प्रवेश । अरु विद्या शब्द करके भेद उपासना अथवा असत्यज्ञान अरु तिसका फल अत्यन्त अन्धतम में प्रवेश कहा । इस प्रकार विद्या अविद्याशब्द का अर्थ तिनके फलाऽनुसार एक २ प्रकार का नवम मन्त्रकरके जो कहा है सो बड़े धीर बुद्धिमान् पुरुष जे विद्या अविद्या के विभाग विवेचनकर्त्ता पूर्व भये हैं तिनके वचनोंद्वारा श्रवण किया है ॥ अरु तैसेही धीरपुरुषों के वचनोंद्वारा विद्या अविद्या के उपासकों को तिनका फल और प्रकार भी श्रवण किया है सो आगे एकादश ११ वें मन्त्र करके कहेंगे । ताते यह जो दशममन्त्रहै सो देहलीदीपकन्याय से नवम अरु एकादश इन दोनों मन्त्रों से सम्बन्ध रखता है । क्योंकि इस मन्त्र में विद्या का फल और अरु अविद्या का फल और कहा है सो नवम मन्त्र से कहे प्रमाण कनिष्ठ अरु अधम अधिकारियों को तो एक २ निरूपण किया । अरु और एक २ प्रकार से मध्यम अधिकारी के अर्थ विद्या अविद्या का स्वरूप अरु फल आगे एकादशवें मन्त्र करके प्रतिपादन करते हैं ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्र में विद्याका फल अन्य अरु अविद्याका फल अन्य कहाहै तहां कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी को विद्या अविद्या अरु तिनका फल

अन्धतम अरु अधिक अन्धतमप्राप्ति नवम मन्त्रकरके कहा । अब अन्य जे मध्यम अधिकारी द्वितीयमन्त्रद्वारा कहेहैं तिनकी विद्या अविद्या का स्वरूप अरु तिनका फल अथवा समुच्चय का फल आगे एकादशवें मन्त्र करके प्रतिपादन करते हैं ॥

विद्यांञ्चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ११ ॥

पदान्वयः ॥

तत् उभयं विद्यां च अविद्यां च यः सह वेद अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतं अश्नुते ॥ ११ ॥

पदार्थ ॥

सो दोनों को विद्या पुनः [तिसका फल] अविद्या पुनः [तिसका फल] जो कोई एकसाध्य जानता है [सो] अविद्याद्वारा मृत्यु को तरके विद्याद्वारा अमृत को प्राप्तहोता है ॥ ११ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! जे द्वितीयमन्त्र से आत्मअध्यास में असमर्थ मध्यम अधिकारी सूचित किये हैं । सो पुरुष १ । दोनों को २ । अर्थात् विद्या को ३ । अरु ४ । तिसके फल को अरु । अविद्या को ५ । अरु ६ । तिस के फल को । अर्थात् विद्या कहिये देवता के स्वरूप आयतन प्रतिष्ठा आदिकों के ज्ञानपूर्वक अहमग्रे अभेद उपासना अरु अविद्या कहिये अग्निहोत्रादि विहित निष्काम कर्म अरु इन दोनों के फल को । जो कोई ७ । एक पुरुष करके अनुष्ठान योग्य ८ । जानता है ९ । अर्थात् जो पुरुष कथितप्रकार की विद्या अविद्या को समुच्चय सेवन करता है सो पुरुष । अविद्याद्वारा १० । मृत्यु को ११ । तरके १२ । विद्याद्वारा १३ । अमरभाव को १४ । प्राप्त होताहै १५ । अर्थात् अग्निहोत्रादि विहित निष्काम कर्मरूपी अविद्या तिसके करने करके अकरण प्रत्यवायजन्य

जो अशुभ योनिकी प्राप्तिरूप मृत्यु तिससे छूटके देवताके स्वरूपादिकों के ज्ञानसहित जो अहं अग्रे उपासना तिस अभेद उपासनारूपी विद्या करके देवता के साथ अभेदभाव की प्राप्तिरूपी जो अमरत्वभाव तिस को प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्रबिषे "। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते "। अविद्याद्वारा मृत्युसों तरके विद्याद्वारा अमरभाव को प्राप्त होता है। ऐसा प्रतिपादन किया है तहां अविद्या जे अग्निहोत्रादि विहित कर्म तिनके निष्काम करने से अन्तःकरणकी मलिनतारूपी मृत्यु सों छूटके विद्या जो ब्रह्मविद्या तिस करके अमरभाव जो मोक्ष तिसकी प्राप्ति होती है ऐसा भी अर्थ ठीक है। परन्तु इस स्थानबिषे सोई अर्थ यथार्थ है जो ऊपर व्याख्या किया है क्योंकि अष्टादशवें मन्त्र बिषे अग्नि से मार्ग याचना कही है सो अग्नि की विद्याद्वारा उपासक के अर्थ है। अरु जे ब्रह्मविद्याद्वारा ब्रह्मआत्मा के अभेद उपासक ज्ञानी सो मार्ग से रहित है क्योंकि जो ज्ञानी के प्राण अन्त समय देह से उत्क्रमण न होके। * " तत्रैव समवलीयन्ते"। जहांहै तहांही अपने अधिष्ठान बिषे लीन होताहै। ताते यहां विद्या अविद्या शब्द का अर्थ जो प्रथम कहा है सोई यथार्थ है तिसको पुनः कहते हैं। हे सौम्य ! जे पुरुष अग्नि की विद्या के ज्ञान से रहित केवल अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं सो देहत्याग के अनन्तर पितृलोक में अपने कर्मों के फल भोग के पुनः ब्राह्मणादि वर्णत्रयी में से कहीं भी अपने कर्मानुसार उत्पन्न होय पुनः कर्मही करते हैं। † " कर्मणा पितृलोकः "। ताते अविद्या जे अग्निहोत्रादि कर्म तिसकरके अकरण प्रत्यवायजन्य जे अशुभयोनियों की प्राप्तिरूप मृत्यु तिससे छूटते हैं। अरु विद्या जे पञ्चाग्नि वैश्वानर तृणाचिकेत आदि अग्निविद्या अथवा दहरादि विद्या तिन विद्या द्वारा

*—† छान्दोग्य उपनिषद् बिषे ॥

देवताओं के स्वरूपादिकों के ज्ञानपूर्वक जे अहं अग्रे अभेद उपासना सो विद्या तिस विद्या करके ब्रह्मलोक किंवा अग्नि आदि देवभाव की प्राप्ति । ×"। विद्यया देवलोकः" सोई अमरत्व की प्राप्ति है ताते अभिप्राय यहहै कि जे कोई पुरुष अग्नि आदि विद्या के ज्ञानपूर्वक अहं अग्रे उपासना करतसन्ते अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं सो पुरुष विहित कर्मद्वारा अकरण प्रत्यवायरूप मृत्यु सों छूटके अग्नि आदिकोंकी विद्याद्वारा समष्टि देवभाव को प्राप्त होते हैं । ताते इस मन्त्रद्वारा विद्या अविद्या करके कर्मउपासना के समुच्चय सेवन करनेवाले मध्यम अधिकारी को जो फल प्राप्त होताहै सो कहा अरु इस समुच्चय के आवान्तर विद्या अविद्या का स्वरूप अरु तिनका फल पृथक् २ भी सूचित किया है ॥ ॐ तत्सत् ॥

सम्बन्ध ॥

इस ११ ग्यारहवें मन्त्रमें अरु ९ नवममन्त्र में विद्या अरु अविद्या का स्वरूप पृथक् २ प्रतिपादन कियाहै सो अधिकारी अरु फल वाक्य के भेद से किया है । तैसेही आगे बारहवें मन्त्र से चौदहवें मन्त्र पर्यन्त तीन मन्त्र करके संभूति अरु असंभूति की उपासना भी अधिकारी अरु फलवाद के भेदसे पृथक् २ प्रकार से प्रतिपादन करेंगे तहां प्रथम कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी जे तृतीय मन्त्र करके सूचित किये हैं तिनको आदि कार्य कारण जे संभूति अरु असंभूति तिनकी उपासना से जो गति प्राप्त होती है सो वेद भगवान् आगे बारहवें मन्त्र करके प्रतिपादन करते हैं ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो यउ सम्भूत्याꣳ रताः ॥ १२ ॥

पदान्वयः ॥

ये असंभूतिम् उपासते [ते] अन्धं तमः प्रविशन्ति ये उ सं-

× बृ० उपनिषद् विषे ॥

भूत्याम्[9] रताः[10] ते[11] ततः[12] भूय[13] इव[14] तमः[15] [प्रविशन्ति] ॥ १२ ॥

पदार्थ ॥

जे[1] असंभूति[2] को उपासते[3] हैं [सो] अदर्शनात्मक[4] अज्ञान[5] प्रति प्रवेश[6] करते हैं [अरु] जे[7] कोई[8] संभूति[9] बिषे रत[10] हैं सो[11] तिससेभी[12] अधिक[13] ऐसे[14] तम[15] में [प्रवेश करते हैं] ॥ १२ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! जो पुरुष १ । असंभूति की २ । उपासना करते हैं ३ । अर्थात् संभव कहिये उत्पत्ति है जिस कार्य की सो संभूति तिस कार्य-रूप से जे अन्यकारणरूप सो कहिये असंभूति जिसको प्रकृति अव्या-कृत माया आदि नाम से कहते हैं सो काम कर्मादिकों को उपजावने-वाली अन्धतम अविद्या तिसकी जो उपासना करतेहैं सो पुरुषतारूपही। अदर्शनात्मक ४ । अज्ञान अन्धकारबिषे ५ । प्रवेश करतेहैं ६ । अर्थात् बारम्बार कारणभाव कोही प्राप्त होते हैं क्योंकि अविद्या का कार्य का-मना तिसको अपने बिषे लेके सकाम कर्मोंकाही अनुष्ठान करते हैं सो अदर्शनात्मक अज्ञानरूप संसार में प्रवेश करतेहैं ताते अपने बिषे नाना प्रकारों के शरीर उपजावने का कारण आपही होते हैं ॥ अरु जे ७ । कोई पुरुष ८ । संभूति बिषे ९ । रत हैं १० । सो ११ । तिससेभी १२ । अधिक १३ । ऐसे १४ । तम में १५ । प्रवेश करते हैं अर्थात् जे कोई अत्यन्त अविवेकी सकाम पुरुष हैं सो संभव है जिसका ऐसा जे आदि कार्यरूप हिरण्यगर्भ सो कहिये संभूति तिसकी जे सकाम उपासना करते हैं सो अधिकतर अदर्शनात्मक अज्ञान अन्धकार बिषे प्रवेश करते हैं। अर्थात् कार्यकी कार्यभावसे जे उपासना तिसकरके जडात्मक कार्यभावको ही प्राप्त होते हैं। अर्थात् प्रकृति का कार्य हिरण्यगर्भ तिसका कार्य अणिमादि ऐश्वर्य तिस ऐश्वर्य की कामना से किया जे कार्य हिरण्यगर्भ की उपासना तिसकरके कार्यरूप जे रत्नादि जड़ ऐश्वर्य तिस भावको प्राप्त होतेहैं ॥ अथवा हे सौम्य ! नास्तिकवादी आत्मा को

असंभूति मानके कहते हैं कि असंभव मृतक का पुनः संभव नहीं अर्थात् शरीर के नाश होतेही आत्मा का नाश होता है पुनः आत्मा कोई रहता नहीं कि जिसका पुनः संभव होय ताते आत्मा असंभूति है ऐसा निश्चय करते हैं हे सौम्य ! सो पुरुष अत्यन्त अन्धतम जे श्वान शूकरादि शरीररूपी नरक तिसको प्राप्त होते हैं। अरु संभव [उत्पत्ति] है जिसकी ऐसा जो शरीर सो संभूति तिस संभूति नामक शरीर को आत्मा मानके कहते हैं कि यह जो दृश्यमान शरीर है सोई आत्मा है। हे सौम्य ! ऐसे जे देहात्मवादी अधमाधिकारी विरोचन की सम्प्रदायवाले चारवाकी सो देहत्याग के अनन्तर महाअन्धतम वृक्षपाषाणादि जडभावकोही वारंवार प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

तात्पर्य ॥

जे कि तृतीय मन्त्र में कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी सकाम कर्म अरु अशुभकर्म करनेवाले कहे हैं तिनके अर्थ कर्मानुसार अज्ञानावृत असुरलोकरूपी फल की प्राप्ति कहा। सो इस कहने से वेद भगवान् ने सूचना किया है कि जो सकाम अरु निषिद्ध कर्म हैं सो मध्यमाधिकारी मुमुक्षु को कर्तव्य नहीं अरु उत्तमाधिकारी मुमुक्षु पुरुषों को तो इन कर्मों का स्मरणमात्र भी कर्तव्य नहीं क्योंकि ये अनर्थके हेतु हैं। अरु यही अर्थ पुनः वेद भगवान् ने नवम मन्त्र करके प्रतिपादन किया है कि जिससे मुमुक्षु पुरुष भूल करके भी विद्या अविद्यारूप कामुक निषिद्ध कर्म अरु भेद भावनारूप उपासना तिनके समीप भी न जाय। अरु सोई अर्थ पुनः इस बारहवें मन्त्र करके मुमुक्षु के अर्थ सूचना किया कि संभूति अरु असंभूति अर्थात् कार्य अरु कारण जे हिरण्यगर्भ अरु आदि प्रकृति तिनकी उपासना भी सकाम अरु भेदभाव से कर्तव्य नहीं क्योंकि सकाम कर्म अरु भेदभाव उपासना तिनके जे फल हैं सो सर्व नाशवान् जड़ हैं ताते सोई अदर्शनात्मक अन्धतम हैं ताते आदि प्रकृति जे सर्व देवादिकों का आदिकारण कि जिसकी उपासना

से त्रैलोक्य की सर्व विभूति प्राप्त होती है तिसकी उपासना भी सकामता से मुमुक्षु को सर्वथा कर्तव्य नहीं । अरु जे कोई प्रकृति आदि देवताओं की सकाम उपासना करते हैं सो अन्त में अन्धतम को प्राप्त होते हैं ॥ ताते वेद भगवान् ने इस मन्त्र से मुमुक्षु को केवल काम्यकर्म अरु भेदभावना आदि अशुभ आचरणों से हटावने के अर्थ कामुककर्म अरु भेद उपासना की निन्दा किया है । अरु तृतीय नवम द्वादश इन मन्त्रोंसे त्रिवाक्यता करके आग्रह सहित वेदने कामुककर्म अरु भेद उपासना तिसका फल अन्धतम असुर लोक प्राप्ति कहके तिनके कर्ता को आत्महत्यारे सूचित किये कि जिससे मुमुक्षु आदि विवेकी पुरुष सकामकर्म अरु भेदभावना के सम्मुख न होय ॥ अरु जे अविवेकी पुरुष अपनी रक्षा में असमर्थ कामुक निषिद्ध कर्म अरु भेद भावना के कर्त्ता आत्महत्यारे हैं तिनको परिणाम में श्वान, शूकर, वृक्ष, पाषाणादि नीच गतिकी प्राप्ति देखाय वेद भगवान् ने कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी का प्रकरण समाप्त किया ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्र बिषे असंभूति अरु संभूति शब्द करके मूलप्रकृति आदि कारण अरु हिरण्यगर्भ आदि कार्य जो जगत्रूपी वृक्ष का आदि बीज अरु आदि अंकुर है सो कहा अरु उनकी भी सकाम अरु भेदभाव उपासना से अन्धतमादि प्राप्ति देखाय मुमुक्षु को कामना अरु भेदभावना से हटाया । अरु कनिष्ठ अधमाधिकारी का प्रकरण समाप्त किया ॥ अब आगे तेरहवें मन्त्र में संभूति की उपासना का फल अन्य अरु असंभूति की उपासना का फल अन्य अर्थात् दोप्रकार का है तिनको वृद्धों की साक्ष्यपूर्वक देहलीदीपक न्यायवत् पूर्वोत्तर मन्त्र से सम्बन्ध करते तेरहवें मन्त्र को प्रारम्भ करते हैं ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

अन्यदेवाहुःसम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

पदान्वयः ॥

सम्भवात्[1] अन्यत्[2] एवं[3] आहुः[4] असम्भवात्[5] अन्यत्[6] आहुः[7] ये[8] नः[9] तत्[10] विचचक्षिरे[11] तेषां धीराणां[12] इति[13] शुश्रुम[14] ॥ १३ ॥

पदार्थ ॥

संभूतिकरके[1] [फल] अन्य[2] ऐसा[3] कहते[4] [अरु] असंभूति करके[5] [फल] अन्य[6] कहते[7] जे[8] हमको[9] संभूति असंभूतिफल[10] कहतेहुए[11] [तिन] धीरपुरुषों[12] का [वचन] ऐसे[13] श्रवणकिया[14] है ॥ १३ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! संभूति की उपासना से १। फल और है २। निश्चय ३। कहते हैं ४। अरु असंभूति की उपासना से ५। फल और है ६। ऐसा कहते हैं ७। अर्थात् संभूति की उपासना का फल और है अरु असंभूतिकी उपासना का फल और है निश्चय से ऐसा कहते हुए। जे ८। हमको ९। उस संभूति असंभूति अरु तिनके फलादिकों का १०। उपदेश करते भये ११। तिन धीर पुरुषों का वचन १२। इस प्रकार १३। श्रवण किया है १४। अर्थात् जिन विद्वान् वृद्धों करके उन संभूति असंभूति का स्वरूप उपासना अधिकारी फल आदिकों का विस्तार विवेचन किया गया है तिन धीरपुरुषों का वचन इतना इस प्रकार श्रवण किया है ॥ १३ ॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्र विषे संभूति की उपासना का फल और असंभूति की उपासना का फल और है ऐसा प्रतिपादन किया है। अर्थात् संभूति अरु असंभूति के उपासकों को फल भिन्न २ दो २ प्रकार के हैं ऐसा निश्चय कहा है तहां जे कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी सकाम उपासक हैं तिनको संभूति असंभूति की उपासना का फल अन्धतम अरु अधिक अन्धतम की प्राप्ति है ऐसा एक प्रकार से बारहवें मन्त्र करके प्रतिपादन किया है ॥ अरु दूसरी प्रकार से मध्यम अधिकारी जे आत्म-

अभ्यास में असमर्थ हुए संसार के क्लेशों की निवृत्ति के अर्थ निष्कामता से संभूति असंभूति की उपासना करनेवाले हैं तिनको उपासना के अनुसार मृत्यु से छूटना अरु अमरत्वप्राप्तिरूपी फल सो आगे चौदहवें मन्त्र से प्रतिपादन करेंगे। ताते संभूति असंभूति की उपासना का फल सकामता निष्कामता के आश्रय भिन्न २ होता है इस प्रकार का निश्चयपूर्वक बड़े धीर विद्वान् वृद्धपुरुषों का वचन श्रवण किया है। हे सौम्य! इस प्रकार यह विद्या एक के समीप से दूसरे को प्राप्त होती है। यह जो तेरहवां १३ मन्त्र है सो देहलीदीपकन्यायवत् बारहवें अरु चौदहवें इन दोनों मन्त्रों से सम्बन्ध करता है तहां एक प्रकार से संभूति असंभूति की उपासना का फल कनिष्ठ अधमाधिकारी के अर्थ १२वें मन्त्र में कहा है अरु दूसरी प्रकार से मध्यम अधिकारी के अर्थ १४वें मन्त्र से प्रतिपादन करते हैं॥

सम्बन्ध॥

इस मन्त्र करके संभूति असंभूति की उपासना के फल भिन्न २ दो २ प्रकार से सूचना किये हैं तहां एक प्रकार से १२ वें मन्त्र से कह के द्वितीय प्रकार से कहने के अर्थ १४ वें मन्त्रका प्रारम्भ करते हैं॥

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयꣳसह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वासम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥ १४॥

पदान्वयः॥

यः तत् उभयं सम्भूतिं च विनाशं च सह वेद [सः] विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतं अश्नुते॥ १४॥

पदार्थ॥

जो पुरुष सो दोनों असम्भूति पुनः सम्भूति को एक जानते हैं [सो] सम्भूतिकरके मृत्युको तरके असम्भूति करके अमृत को प्राप्त होते हैं॥ १४॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! जो पुरुष द्वितीय मन्त्र करके कहे आत्म अध्यास में असमर्थ मध्यमाधिकारी १ । सो पुरुष २ । दोनों को ३ । अर्थात् संभूतिशब्द करके * असंभूति को ४ । अरु ५ । विनाश शब्द करके संभूति को ६-७ । अर्थात् असंभूति सो आदिकारण प्रकृति अरु विनाश सो संभूति आदिकार्य हिरण्यगर्भ इन दोनों को । एक करके ८ । जानता है ९ । अर्थात् एकही पुरुष असंभूति अरु संभूति को अरु तिन के फल को एक जान के निष्कामता से दोनों को समुच्चय सेवन करता है सो पुरुष । विनाशधर्मा जो कार्य संभूति हिरण्यगर्भ तिसकी उपासना से १० । अनैश्वर्यरूपी मृत्यु को ११ । तरके १२ । पुनः असंभूति जो आदिकारण प्रकृति तिसकी उपासना से १३ । अमृतको १४ । अर्थात् प्रकृतिलय लक्षणरूप को प्राप्त होता है १५ ॥ १४ ॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्र बिषे ।"विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते" । ऐसा प्रतिपादन किया है तहां विनाश धर्म है जिसका ऐसा जो संभूतिरूप कार्यब्रह्म हिरण्यगर्भ सर्वसूक्ष्म शरीरों की समष्टिता परिणाम में प्रकृति बिषे लय होनहार ताते विनाशी तिस हिरण्यगर्भ की उपासना से अनैश्वर्यरूपी मृत्यु सों तरके । अर्थात् हिरण्यगर्भ की उपासना से अणिमादि ऐश्वर्यरूपी फल की प्राप्ति है सो उपासना का असाधारण फल है सो हिरण्यगर्भ के निष्काम उपासक पावते हैं । तिसकी प्राप्ति से दारिद्र्यआदि अनैश्वर्यरूपी मृत्यु से तरजाते हैं ॥ अरु असंभूति कहिये नहींहै संभव (उत्पत्ति) जिसका ऐसी जो संभवसे रहित आदि कारण प्रकृति जो कि चैतन्य परमात्मा की सत्ता पाय सूक्ष्म स्थूलादि सर्व ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करनेवाली तिसकी जे निष्काम उपासना

* श्रीशंकराचार्य ने सम्भूतिका अर्थ असम्भूति अरु विनाशका अर्थ सम्भूति किया है ॥

करते हैं सो परिणाम में देहत्यागान्तर प्रकृतिलय लक्षणरूप अमृत को प्राप्त होते हैं। अर्थात् वे पुरुष पुनः कार्यभाव को प्राप्त नहीं होते सोई उनको अमरत्व प्राप्ति है। एतदर्थ इस मन्त्र बिषे विनाश शब्द करके संभूति आदि कार्य हिरण्यगर्भ को कहा अरु असंभूति शब्द करके अव्याकृत आदिकारणको कहा। इनदोनों की समुच्चय उपासना करनेवाले मध्यम अधिकारी तिनको जो फल प्राप्त होता है सो कहा। अरु इस समुच्चय के अवान्तर संभूति असंभूति का स्वरूप अरु तिनकी उपासना का फल पृथक् २ भी सूचित किया। अरु १२ वें मन्त्र से १४ वें मन्त्र पर्यन्त संभूति असंभूति का स्वरूप अरु तिनकी उपासना का फल पृथक् २ सूचन किया है तहां १२ वें मन्त्र में सकाम भिन्नभाव से उपासना का फल कनिष्ठ अधमाधिकारी के अर्थ अन्धतम अरु अधिक अन्धतम प्राप्ति कहा है। अरु इस १४ वें मन्त्र करके संभूति असंभूति की निष्काम अभेद उपासनाका फल मृत्युसे तरना अरु अमरभाव की प्राप्ति प्रतिपादन करके मध्यम अधिकारी की उपासना का प्रसंग वेद भगवान् ने यहां समाप्त किया। इस उत्तरार्ध में नवम से चतुर्दशवें मन्त्र पर्यन्त मध्यम अरु कनिष्ठ अधमाधिकारी की उपासना का प्रसंग प्रतिपादन किया है तहां कनिष्ठ अधमाधिकारी को कामुक अरु निषिद्ध कर्मों का फल विद्या अविद्याद्वारा अन्धतम अरु अधिक अन्धतम की प्राप्ति नवम मन्त्र करके कहा अरु उनहीं के अर्थ संभूति असंभूति की उपासना का फल भी अन्धतम अरु अधिक अन्धतमही बारहवें मन्त्र करके प्रतिपादन किया। अरु मध्यम अधिकारी को निष्काम विहित सज्ञातकर्म का फल विद्या अविद्याद्वारा मृत्यु से तरना अरु अमरत्व यह एकादशवें मन्त्र करके प्रतिपादन किया। अरु उनहींके अर्थ निष्काम सज्ञात संभूति असंभूति की अभेद उपासना का फल मृत्यु से तरना अरु अमरत्व प्राप्ति चतुर्दशवें मन्त्र करके प्रतिपादन किया। अरु दशम त्रयोदश इन दोनों मन्त्रों को मध्य में वृद्धों के वाक्यों के सम्ब-

न्धार्थ प्रतिपादन किया । ताते नवम से चतुर्दशवें मन्त्रपर्यन्त कनिष्ठ अधमाधिकारी अरु मध्यमाधिकारी का प्रसंग वेद भगवान्ने प्रतिपादन किया ॥ अब एकादशवें मन्त्र में कहा है कि "विद्ययाऽमृतमश्नुते" विद्या करके अमरभाव को प्राप्त होतेहैं सो कौन २ विद्या करके कौन २ उपासनाद्वारा कौन २ अमरभाव की प्राप्ति मध्यमाधिकारी को प्राप्त होती है सो संक्षेपमात्र चार मन्त्र से प्रतिपादन करतसन्ते वेदभगवान् इस उपनिषद् को पूर्ण करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्र में मध्यम अधिकारी को संभूति असंभूति की निष्काम अभेद सज्ञात उपासना का फल मृत्यु से तरना अरु अमरभाव की प्राप्ति निरूपण करके मध्यम अधिकारी उपासक की संभूति असंभूति की उपासनाद्वारा परिणामगति का प्रकरण समाप्त किया ॥ अब आगे मध्यम अधिकारी कोही विद्या के आश्रय उपासनाद्वारा अमरभाव की प्राप्ति जैसे होती है सो निरूपण करेंगे । तहां प्रथम सूर्यभगवान्द्वारा जे सत्यपरमात्मा के उपासक हैं तिनकी अपने उपास्यदेव से मार्गयाचना पञ्चदशवें मन्त्र करके वेदभगवान् प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । तत्त्वं-म्पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १५ ॥

पदान्वयः ॥

हे पूषन् सत्यस्य मुखं हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितं तत् त्वं सत्यधर्माय दृष्टये अपावृणु ॥ १५ ॥

पदार्थ ॥

हे पूषन्, सूर्य ! सत्य परमात्मा का द्वार तेजोमय पात्रकरके आच्छादित है तिसको तुम सत्यधर्मा मुझ को दर्शनके अर्थ खोलदो ॥ १५ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य! जे कोई एक पुरुष सूर्य भगवान् द्वारा प्रत्यगात्मा के उपासक हैं सो अपने को अमृतत्व प्राप्ति के अर्थ अपने उपास्य सूर्य भगवान् से परमात्मा के दर्शनार्थ अभिलाषा करतसन्ते प्रार्थना करे हैं कि॥ हे जगत् के पोषणकर्त्ता सूर्य! १। तुम्हारे मण्डल बिषे जो सत्य परमात्मा है तिसका २। दर्शनद्वार ३। सो तुम्हारे तेजोमय ४। पात्र करके ५। अर्थात् बिम्ब करके आच्छादित है ६। तिसको ७। तुम ८। सत्यधर्मा को ९। अर्थात् सत्यस्वरूप जे तुम तिसकी यथोचित उपासना से सत्यधर्मा जो मैं तिस मुझको। देखने के अर्थ १०। खोल देवो ११। अथवा हे सर्व के पोषणकर्त्ता सूर्य! सत्यस्वरूप जो सर्वान्तर प्रत्यगात्मा तिसके दर्शन का जो मुखद्वारा शुद्ध अन्तःकरण सो हिरण्मय पात्र करके। अर्थात् सुवर्णादि द्रव्यविषयक लोभात्मक वृत्ति करके। आच्छादित है तिसको तुम मुझ सत्यधर्मा को दर्शन के अर्थ खोलदेवो। अर्थात् तुमहीं को सत्यदेव जानके तुम्हारीही स्तोत्र नमस्कारादि द्वारा यथोचित आराधना करनेवाला याते सत्यधर्मा ऐसा जो मैं तिसको अपने हृदयस्थ स्वयंप्रकाश अन्तर्यामी प्रत्यगात्मा तिस को साक्षात् आत्मत्व से अनुभव करने के अर्थ उस लोभात्मकादि अशुभवृत्तियों को अनुग्रह करके दूर करो यही आपसे मेरी प्रार्थनाहै॥१५॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्र से सूर्य भगवान् द्वारा प्रत्यगात्मा की उपासनावाले को वेदवाक्य से सूर्यकी उपासना करतसन्ते अन्तर से उपास्यदेव आगे अमरत्व आत्मा की प्राप्त्यर्थ याचना कर्तव्य प्रतिपादन किया है। तैसेही अन्य देवताओं के उपासकों को भी जिसकी वेदोक्त उपासना होय तिस देवता से अमृतत्व आत्माकी ही प्राप्ति याचना कर्तव्य है कि जिस करके परिणाम में परमशान्त अमृतत्व की प्राप्ति होय। यह सूचना किया॥ और सर्व मनुष्यमात्र ने भी कर्म उपासना करके

स्वस्वरूप के सम्यग्बोधार्थही प्रार्थना कर्तव्यहै नतु विषयार्थ जो कि अन्धतम प्राप्ति के हेतु हैं ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्र बिषे सूर्य भगवान् की प्रत्यक् उपासना देखाय उपासक को अपने आप आत्मा के सम्यग्बोधार्थही उपास्यदेव से याचना कर्तव्य सूचित किया । अब अहमग्रे उपासना की रीति से सूर्य की प्रार्थना के अर्थ १६ वें मन्त्र का प्रारम्भ करते हैं ॥

पूषन्नेकर्षेयमसूर्य प्राजापत्यव्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजोयत्ते रूपंकल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसा
वसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

पदान्वयः ॥

हे पूषन् ! हे एकर्षे ! हे यम ! हे सूर्य ! हे प्राजापत्य ! रश्मीन् व्यूह तेजःसमूह [एकीकुरु] यत् ते कल्याणतमं रूपं तत् ते पश्यामि यः असौ पुरुषः सः असौ अहम् अस्मि ॥ १६ ॥

पदार्थ ॥

हे पोषणकर्ता ! हे एकचलनेवाले ! हे सर्वकेसंयमनकर्ता ! हे सर्व रसकेस्वीकार कर्ता ! हे प्रजापति के पुत्र ! [सो] अपनी किरणों को दूरकरो ताप के समूहको [एकत्रकरो] जो तुम्हारो कल्याणतम रूप है तिसको तुम्हारेप्रसाद से मैं देखताहौं जोयह [तुम्हारेबिषेपूर्ण] पुरुष है सो ई यह मैं हौं ॥ १६ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! अब सूर्य भगवान् का जो अहमग्रे उपासना करनेवाला उपासक है सो सूर्यभगवान् से प्रार्थना करता है कि हे सर्व के पोषणकर्ता पूषा ! १ । हे एक चलनेवाले ! २ । अर्थात आकाशमण्डल में

चलनेवाले जे ग्रहादिक तिनका अधिपति एक ताते "एकर्षे" । हे संय-
मनकर्ता ! ३ । अर्थात् सर्वप्राणधारियों को अपने २ नियम में रखने
वाला न्यायकर्ता यम । हे सूर्य ! ४ । अर्थात् सर्वरसजातिको अपने विषे
अपनी किरणों द्वारा स्वीकारकर्ता । हे प्रजापति के पुत्र ! ५ । अर्थात्
संवत्सरात्मक कालमूर्ति । अपनी किरणोंको ६ । दूर करो ७ । अरु अपने
तापकतेजके ८ । समूहको ९ । एकत्र करो कि जिस करके । जोकि १० ।
तुम्हारा ११ । कल्याणतमरूपहै १२-१३ । अर्थात् जो तुम्हारा अति-
शोभन परमशान्त आनन्दघन निराकार कल्याणतमरूपहै । तिसको १४ ।
तुम्हारे प्रसाद करके १५ । मैं देखता हौं १६ । जो यह १७ । तुम्हारे
बिषे चैतन्यपुरुष है १८ । सोई १९ । यह २० । अर्थात् जो यह प्राण
बुद्ध्यादि संघात बिषे पूर्ण चैतन्य पुरुषहै सो । हम २१ । हैं २२॥१६॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्र बिषे जे सूर्यभगवान् के विशेषण कहे हैं सो सर्व सूर्यस्थ चैतन्य पुरुष के कहे हैं । अरु जो सूर्यस्थ चैतन्य पुरुष है सोई प्राण-बुद्ध्यादि सर्व संघातस्थ चैतन्य है ताते जे विशेषण सूर्यस्थ चैतन्य के हैं सोई प्राणस्थ चैतन्य के हैं तिसको श्रवण करो । हे सौम्य ! जैसे चैतन्य पुरुष सूर्य साथ मिलके वृष्टि आदि द्वारा जगत् का पोषण करता है तैसेही प्राण साथ मिलके अन्नादिकों के रसद्वारा शरीररूपी जगत् का पोषण करता है । अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्य साथ मिलके सर्व ग्रहादिकों में श्रेष्ठता से एक आकाश में चलनेवाला है । तैसे[3] ही[2] प्राणों द्वारा मनआदि सर्व में श्रेष्ठताते एकै हृदयाकाश में विचरने वाला है । अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा सर्व ब्रह्माण्ड को अपने २ नियम में राखतसन्ते सर्व का द्रष्टा साक्षी है । तैसेही प्राणद्वारा शरीररूपी ब्रह्माण्ड बिषे सर्व इन्द्रियादिकों को अपने २ नियम में राखत सन्ते सर्व का द्रष्टा साक्षी है । अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा सम्पूर्ण रसजाति को अपने बिषे स्वीकार करताहै । तैसेही प्राणद्वारा सर्वअन्नादि रसों का

भोक्ता है " अत्ता चराचरग्रहणात् " " प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् " अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा प्रजापति का पुत्र कहावता है। तैसेही प्राणद्वारा मिलके लिङ्ग अथवा वीर्यद्वारा पिता का पुत्र कहावता है। " आत्मा वै जायते पुत्रः " ताते जो एक चैतन्य पुरुष सूर्य अरु प्राणरूपी उपाधि साथ मिलके अधिदैव अरु अध्यात्म भाव को प्राप्त भया है सो चैतन्य वास्तवस्वरूप करके उभय स्थानों में एकही है इसही हेतु से अहमग्रे उपासना करनेवाला पुरुष अपने उपास्य सूर्य भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे सूर्य! तुम अपनी किरणों को दूर करो अरु अपने तापक तेजको लय करो कि जिस करके तुम्हारे वास्तविक परमकल्याणरूप चैतन्य पुरुष को अपना आप आत्मा करके अनुभव करता हौं क्योंकि सोई चैतन्य पुरुष मैं हौं । अथवा हे सूर्यस्थ पुरुष परमसूर्य ! इस शरीर में जो प्राणरूपी सूर्य है तिसकी प्राणापानादि भेद से नानाप्रकार की प्रसरित वृत्तिरूपी किरणें तिसको तुम अपने अनुग्रह करके हृदयाकाश बिषे एकत्र करो कि जिसकी एकता से प्राणही बिषे प्रकाशित जे परम चैतन्य प्राण का भी प्राण तिस को साक्षात् अपना आप अनुभव करें क्योंकि वास्तव करके श्रुतियों के तत्त्वमस्यादि प्रमाण से अरु अपने आप यथार्थ अनुभव से जो सम्पूर्ण चराचर जगत् में परिपूर्ण ताते पुरुष अथवा सर्व शरीररूपी पुर बिषे किंवा पुरीतती नाड़ी बिषे शयन करनेवाला ताते पुरुष। अर्थात् सर्व शरीरों बिषे सुषुप्तवत् निर्विकल्प अक्रिय परमशान्तहै ताते सर्व शरीरोंरूपी पुरबिषे सोवनेवाला याते पुरुष। सोई सर्वव्यापी अक्रिय परमशान्त विज्ञानघन चैतन्य मैं हौं। हे सौम्य! इस प्रकार सूर्य भगवान् द्वारा परमात्मा का अहमग्रे उपासना करनेवाला उपासक है सो उपास्य देव साथ अपने आप आत्मा की अभेदता को अनुभव करे है सो मध्यम अधिकारी कहे प्रकार उपासना करतसन्ते देहत्यागान्तर सूर्य मण्डलस्थ चैतन्य पुरुष साथ अभेद होय अमृतत्व को प्राप्त होताहै ॥

सम्बन्ध ॥

इस १६ वें मन्त्र विषे अहमग्रे उपासनावाले उपासकको उपास्यदेव साथ अभेदतारूप अमृतत्वप्राप्ति देखाया ॥ अब अहमग्रे उपासनावाला उपासक अपने मरणकाल में मोक्षार्थ अपने उपास्यदेव से प्रार्थना अरु मन को शिक्षा करता है सो सत्रहवें मन्त्र करके प्रतिपादन करते हैं ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् । ओ३म् क्रतोस्मर कृतꣳस्मर क्रतोस्मर कृतꣳस्मर ॥ १७ ॥

पदान्वयः ॥

अथ वायुः अनिलम् अमृतम् इदं शरीरं भस्मान्तम् [भूयात्] हे क्रतो ओ३म् स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥ १७ ॥

पदार्थ ॥

अथ इसकालमें प्राणवायु सूत्रात्मा को [अरु] लिङ्गशरीर [अपने कारण को] यह शरीर अन्तभस्मभाव को [प्राप्तहो] हे मन ! ओंकार को स्मरण करो [अरु] कर्म को स्मरणकरो। द्विवचन प्रणवउपासनाके आदरार्थ है ॥ १७ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! पूर्वकहे प्रकार सूर्यभगवान्की अहमग्रे उपासनावाले उपासक हैं सो यावत् आयुष्य तावत् समाहितचित्त होके उपासना करते हैं सो जब उनका मरणकाल निकट आवताहै तब अपने उपास्यदेव आगे प्रार्थना करता है कि हे सूर्यभगवान् ! इस काल में १। प्राणवायु २। अर्थात् इस उपस्थितकाल में मरण को प्राप्त होता जो मैं तिस मेरे शरीरस्थ जो प्राण वायु है सो । अनिल ३ । अर्थात् सर्वात्मा वायु (सूत्रात्मा) तिसको प्राप्त होय। अरु यह ४ । लिङ्गशरीर ५ । अर्थात् जो शरीर स्वप्न अरु परलोक के भोगों का भोक्ता है सो अपने कारणभाव को प्राप्त होय । अरु यह शरीर ६ । अर्थात् यह दृश्यमान स्थूल

अस्थिमांसमय शरीरनाम से जो सावयव पिण्ड है सो । अन्त में भस्म होय ७ । अर्थात् प्राणउत्क्रामण के पश्चात् आहुतिवत् अग्नि में हवन किया भस्म होय । हे सौम्य ! यहां पर्यन्त अर्थात् इसमन्त्र के पूर्वार्ध पर्यन्त सूर्य भगवान् की अहमग्रे उपासनाके बलसे उपासक अपने उपास्य देवकी प्रार्थना करके अमृतत्व को प्राप्त होता है सो निरूपण किया ॥ अब आगे इस मन्त्र के उत्तरार्ध करके प्रणव के उपासक को अन्तकाल में प्रणव का स्मरण करना सूचित करते हैं । हे सौम्य ! जो पुरुष समाहितचित्त होके शरीरावसानपर्यन्त त्रिमात्रिक प्रणव की उपासना करता है सोपुरुष अपने देहावसान समयमें अपने मनसे कहताहै कि हे "क्रतो" संकल्पविकल्प के कर्ता मन १ । ॐकार को २ । स्मरणकरो ३ । अर्थात् जिसकाल के साधनेके अर्थ यावत् आयुष्य प्रणव की उपासना कियाहै सो काल अब उपस्थित है ताते ॐकार को स्मरण करो कि जिसके प्रभाव से ब्रह्मलोक में ब्रह्माद्वारा त्रिमात्रिक प्रणवका उपदेश पाय अमृतत्व को प्राप्त होवोगे ताते हे मन ! अब इसकाल में अपने कल्याणार्थ ॐकार का स्मरण करो । अरु हे मन ! अपने किये कर्म को स्मरण करो ४–५ । अर्थात् प्रणवोपासना करतसन्ते तू ने अग्निहोत्रादि विहित निष्कामकर्म जो कि निषिद्धकर्मको नाश करके अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा प्रणवोपासना में सहायक भये हैं तिन कर्मों को भी स्मरण करो ॥ इस मन्त्र में स्मरणार्थ द्विवाक्यता है सो प्रणवोपासना के आदरार्थ है ॥ १७ ॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्र के पूर्वार्ध में कहा है कि सूर्यकी अहमग्रे उपासना करने वाले हैं सो शरीरान्तकाल में अपने उपास्यदेव की प्रार्थना करतेहुए अमृतत्व को प्राप्त होते हैं तब उसकाल में उसके प्राण सूत्रात्मा में लय होते हैं । अरु अमर जे लिङ्गशरीर हैं अर्थात् विना यथार्थ आत्मज्ञान के अन्य किसी प्रकार भी लिङ्ग का नाश नहीं ताते लिङ्ग को

अमर कहते हैं। तथाच "द्वेवावब्रह्मणोरूपे मूर्तञ्चैवामूर्तञ्च मर्त्यञ्चामृतञ्च" सो लिङ्ग सूक्ष्म इन्द्रियादिकों का संघात है कि जिस करके स्वप्न में दर्शन श्रवणादिक्रिया होती है तिस लिङ्ग बिषे जे सूक्ष्म देवांश हैं सो अपने २ समष्टि देवता साथ एक होते हैं सो देवांश अपने समष्टि देवता बिषे गये फेर नहीं आवते क्योंकि वह उपासक अपने उपास्यदेवगत चैतन्यपुरुष साथ अभेद होता है ताते पुनः उसको स्थूलशरीररूपी क्षेत्र नहीं होता इसही से उसकी इन्द्रियां फेर आवती नहीं। अरु यह जो स्थूलशरीरहै सो परिणाम में अग्नि बिषे हवन किया अपने कारणभाव को प्राप्त होता है। हे सौम्य! इस प्रकार जब विद्वान् उपासककी स्थूल सूक्ष्म सर्वउपाधि अपने २ कारण भाव को प्राप्त होतीहै तब तिस बिषे उपपन्न था जो चैतन्य परमात्मा का आभास जीव कि जिसको उपाधि के सम्बन्ध से अल्पज्ञतादि संज्ञा प्राप्त भई थी सो अपने उपास्यदेवगत सत्य चैतन्यपुरुषरूपी बिम्ब कि जिसको अपनेआप आत्मत्व से अनुभव किया है तिस साथ भेद से रहित अभेद ऐक्यता को पावता है सोई विद्वान् उपासक को परमअमृतत्व की प्राप्ति है कि जिस प्राप्ति से पुनः अविद्याजन्य दुःखमय नाशरूप उपाधि को प्राप्त होता नहीं। ताते मध्यमअधिकारी इस प्रकार अहमग्रे उपासनाकरके देहत्यागान्तर अमृतभाव को प्राप्त होय आवागमन से रहित होता है॥ अथवा जे सूत्रात्मा समष्टिप्राण के व्यष्टिप्राण द्वारा अहंअग्रे उपासना करनेवाले उपासक हैं सो अपने देहत्यागान्तर अपने उपास्य देव सूत्र आत्मा के साथ अभेद होते हैं सोई उन मध्यमाधिकारी को वर्कादि प्राणविद्या द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति है॥ अरु इस मन्त्र के उत्तरार्ध में प्रणव की उपासना करनेवाले के अर्थ वा सर्वको अपने २ शरीर त्यागने के समय ॐकार का स्मरण करना द्विवाक्यता करके वेद ने कहा है तिस करके प्रणवोपासना की श्रेष्ठता देखाई है ताते सर्व पुरुषों को अपने २ देहाव-सानसमयमें ॐकार का स्मरण अवश्यही कर्तव्य है॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्र के पूर्वार्ध से सूर्य भगवान् अथवा सूत्रात्मा की अर्ह अग्रे उपासनाद्वारा अमृतत्वप्राप्ति प्रतिपादन किया अरु उत्तरार्ध करके प्रणव के स्मरणद्वारा अमृतत्वप्राप्ति प्रतिपादन किया । अब आगे अग्नि के उपासक को अमृतत्वप्राप्ति १८ वें मन्त्रसे प्रतिपादन करतसन्ते ग्रन्थ की पूर्णता करते हैं ॥ इति सम्बन्धः ॐतत्सत् ॥

अग्ने नयसुपथाराये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

इति ईशावास्योपनिषद् । ॐ तत्सत् ॥

पदान्वयः ॥

हे देव ! हे अग्ने ! विश्वानि वयुनानि विद्वान् अस्मान् राये सुपथा नय अस्मत् जुहुराणं एनः युयोधि ते भूयिष्ठां नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥ इति पदान्वयः ॥ ओम् ॥ १८ ॥

पदार्थ ॥

हे प्रकाशात्मकदेव ! हे अग्नि ! सर्व कर्मको जानतेहो हम कर्मकर्ताओं को कर्मफलके अर्थ शोभनमार्ग से प्राप्तकरो [अरु] हमारे कुटिलवचनात्मक पापको विनाशकरो तुम्हारे अर्थ बहुत से नमस्कारवचन विधानकरते हैं ॥ इति पदार्थ ॥ हरिःॐ तत्सद्ब्रह्म ॥ १८ ॥

भावार्थ ॥

हे सौम्य ! अब अग्नि देवता से अमृतत्वप्राप्ति के अर्थ उसका उपासक प्रार्थना करता है । हे प्रकाशवान् देव ! १ । हे अग्नि ! २ । सम्पूर्ण ३ । हमारे कर्मों को ४ । जानते हौ ५ । ताते हम कर्मविशिष्टों को ६ । अर्थात् समाहित चित्त से निरन्तर निष्काम विहित कर्म करने

वाले हम कर्मी लोग तिनको। कर्मफल भोगने के अर्थ ७। शोभनमार्ग करके ८। प्राप्त करो ९। अर्थात् दक्षिणमार्गवर्जित उत्तरायणमार्ग से प्राप्त करो। अरु हमारे १०। कुटिलवचनात्मक ११। पापों को १२। अर्थात् विहितकर्म करतसन्ते अज्ञानवश असत्य किंवा व्यंग वचन जो कथन भया होय तो तज्जन्यपापों को। विनाश करो १३। कि जिस करके हम अत्यन्त पवित्र होयँ अपने इष्ट अमृतत्व को प्राप्त होवें एतदर्थ इस शरीरावसानकाल में अशक्यता करके हवनादि परिचर्या में असमर्थ जे हम सो तुम्हारे अर्थ १४। बहुत से १५। नमस्कारवचन १६। विधान करते परिचर्या करते हैं १७॥ १८॥

इति ईशावास्यउपनिषद् का भाषाटीका भावार्थ सम्पूर्ण॥

तात्पर्य॥

"कुर्व्वन्नेवेह कर्माणि" इत्यादि। इस द्वितीयमन्त्र करके आत्मअध्यास में असमर्थ मध्यम अधिकारी को निष्काम विहित अग्निहोत्रादि कर्म कर्तव्य कहा क्यों जो उस मध्यमाधिकारी को अमृतत्व प्राप्ति का साधन कर्म उपासनाही है तहां। विहित कर्म करतसन्ते अकरणप्रत्यवायजन्य पापरूपी मृत्युसों तरके सूर्यादि देवता किंवा त्रिमात्रिकप्रणव की वेदवाक्यानुसार उपासना करता है सो उपासक तिस उपासनारूपी विद्या करके अमृतत्व को जिस प्रकार प्राप्त होता है सो १५ वें मन्त्र से इस १८ वें मन्त्र पर्यन्त निरूपण किया तहां इस १८ वें मन्त्र से मध्यमाधिकारी अग्नि की विद्याद्वारा अहंअग्ने उपासना करते हैं सो अन्त समय अग्नि की प्रार्थनाकर शुद्ध उत्तरायण देवयान मार्गद्वारा सत्यलोक को अथवा शुद्ध समष्टि अग्निभाव को प्राप्त होते हैं। सोई अग्नि की विद्या करके अमृतत्व प्राप्ति है। याते वेदवाक्यानुसार ज्ञातपूर्वक उपासना करनेवाले जे अग्निके उपासकहैं सो "न स पुनरावर्त्तते"। जन्म मरणरूप संसार में पुनः आवते नहीं। अर्थात् वह उपासक अपने उपास्य देव साथ अभेद हुआ अमर अर्थात् देवत्वभाव को प्राप्त होय

अन्यों करके उपासना करने योग्य होता है ॥ इति तात्पर्यार्थं समाप्तं शुभम् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति ईशावास्योपनिषद् भाषाटीकासहिता समाप्ता ॥

शुभम् ॥

॥ ॐ ॥

॥ ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

॥ ॐ ॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदुच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐम् ॥

॥ सूचीपत्रम् ॥

॥ १ ॥ प्रथम मूलमन्त्र तिसके ऊपर पदच्छेद की रेखा अरु अन्वयाङ्क ॥

॥ २ ॥ मूल के नीचे अन्वयके क्रम से मूलमन्त्र के पद ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६

॥ ३ ॥ अन्वय पदके नीचे तदनुसार भाषा में पदार्थ ॥

॥ चिह्नसूचना ॥

[ ] इस चिह्नान्तर में शेष विशेष के पद ॥

" " इस चिह्नान्तर में अन्य श्रुतियों के प्रमाण ॥

॥ विनय ॥

इस भाषाऽनुवाद में जो कुछ लेख अरु यन्त्रादि दोष होयँ तिनको सर्वपाटक जन क्षमा करें ॥

निम्नलिखित पुस्तकों के सिवा और भी हर प्रकार की पुस्तकें मौजूद हैं जिनको आप हमारे सूचीपत्र में देख सकते हैं॥

नीचे लिखे उपनिषद् पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर कृत हैं.

केनोपनिषद् भाषाटीका सहित	=)
कठवल्ली उपनिषद् भाषाटीका सहित	≡)।।
प्रश्नोपनिषद् भाषाटीका सहित	≡)
मुण्डक उपनिषद् भाषाटीका सहित	=)।
माण्डूक्योपनिषद् भाषाटीका सहित	।।=)
तैत्तिरीयोपनिषद् भाषाटीका सहित	।-)।
ऐतरेयोपनिषद् भाषाटीका सहित	=)।।।
छान्दोग्योपनिषद् भाषाटीका सहित कामिल	१-)

नीचे लिखे उपनिषद् रायबहादुर बाबूजालिमसिंह कृत हैं.

ईशावास्य उपनिषद् भाषाटीका सहित	=)
केनोपनिषद् भाषाटीका सहित	=)
कठवल्ली उपनिषद् भाषाटीका सहित	।।)
प्रश्नोपनिषद् भाषाटीका सहित	।=)
मुण्डकउपनिषद् भाषाटीका सहित	।=)
माण्डूक्योपनिषद् भाषाटीका सहित	=)
तैत्तिरीयोपनिषद् भाषाटीका सहित	।।)

मिलने का पताः-

रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायण भार्गव.

मालिक नवलकिशोर प्रेस-लखनऊ.





